दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2498 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 28 अंक नं० 1

दोज और पूर्णिमा

फतेपुर (गुजरात) में वैशाख शुक्ला दोज के शुभ दिन पूज्य श्री कानजीस्वामी की जन्म-जयंती बड़े हर्षोल्लासपूर्व मनायी गयी। पूज्य स्वामीजी ने प्रातःकाल मांकलिक (श्री समयसार गाथा-1) सुनाते हुए कहा कि—

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलि भणियं ॥1॥

— इस अपूर्व मंगल द्वारा सर्व सिद्ध भगवंतों को नमस्कार किया है। अनंत सिद्ध भगवंतों को लक्ष में लेकर उनका सन्मान करने से, बहुमान करने से, उन्हें अपने आत्मा में स्थापित करके नमस्कार करने से राग से हटकर अपने शुद्धात्मा पर लक्ष जाता है; जिससे स्वसन्मुखता होकर भेदज्ञानरूपी दोज का उदय होता है और पश्चात् उसमें एकाग्रता द्वारा केवलज्ञान की पूर्णिमा उदित होती है। इसप्रकार दोज का उदय होकर आत्मा पूर्णता को प्राप्त करे, वह अपूर्व मंगल है।

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जून : 1972] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (325) एक अंक 35 पैसा [द्वि. वैशाख : 2498

जड़-चेतन का खेल

हजारीलाल जैन 'काका', पोस्ट-सकरार, (झाँसी, उत्तरप्रदेश)

जग में जो कुछ देख रहे सब जड़-चेतन का खेल है,
हम-तुम तबतक बोल रहे हैं जबतक इनका मेल है।

[1]

पता नहीं कब इस शरीर से कौन द्रव्य कम हो जाये,
और हमारी आशाओं पर वज्रपात कब हो जाये,
जिस सुत को धन कमा रहे तुम तजकर अपने ध्येय को,
वही जलायेगा मरघट में ले जाकर इस देह को,
काल कुल्हाड़ा लिये खड़ा बस दो श्वासों का झेल है,
हम-तुम तबतक बोल रहे हैं जबतक इनका मेल है।

[2]

मैं या मेरा के चक्कर में फँसा हुआ संसार है,
सकल ज्ञेय-ज्ञायक होकर भी भूला सुख का द्वार है,
जड़ का चेतन बना पुजारी खोकर अपने सत्त्व को,
पर को अपना समझ रहा है भूला असली तत्त्व को,
चिदानंदघन के निश्चय से मिटता जग का खेल है,
हम-तुम तबतक बोल रहे हैं जबतक इनका मेल है।

[3]

भ्रमण किया चारों गतियों में मिला न कहीं ठिकाना है,
पर में सुख को खोजा अबतक बना फिरा दीवाना है,
विषय-वासना का विष पीकर आतम-रस नहिं जाना है,
निजानंद को भूला चेतन सुख का जहाँ खजाना है,
मिली मोक्ष जाने को 'काका' यह काया की रेल है,
हम-तुम तबतक बोल रहे हैं जबतक इनका मेल है।

(फतेपुर : कवि-सम्मेमलन में)

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

जून : 1972 ☆ द्वितीय. वैशाख : वीर नि० सं० 2498, वर्ष 28 वाँ ☆ अंक : 1

आत्मा अद्वितीय है

अंतर की गहराई से सर्व संत कहते हैं कि—अहा, चैतन्यतत्त्व की महिमा अति गंभीर है। अनंत गंभीर भावों से भरपूर आत्मा इतना गहरा है कि जगत में कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता। सर्व शास्त्रों ने चैतन्य की महानता के गीत गाये हैं; तथापि वचन से उसकी महिमा का अंत नहीं आता, अनुभव से ही उसका पार पाया जा सकता है।

ज्ञायकभाव से भरपूर, परमानंद से परिपूर्ण, और इंद्रियों से पार ऐसा महान पदार्थ स्वयं मैं ही हूँ; इस चैतन्य के उच्च या सुंदर वस्तु ही जगत में कोई नहीं है कि जिसमें उपयोग स्थिर हो।—ऐसे अपने ज्ञायक महात्मा को जिसने लक्ष में लिया वह जीव जगत का नायक हुआ।

अहा, आत्मा का अचिंत्य वीतरागी सामर्थ्य, उसकी अचिंत्य विशालता, उसकी परम शांति—श्रीगुरु के मुख से जिसका श्रवण करते हुए मुमुक्षु को हर्ष हो, जिसका चिंतन करने से आत्मोल्लास जागृत हो और जिसका अनुभव करने से तो.... अहा, क्या बात है!

सम्यग्दर्शन पक्षातिक्रांत है

पूज्य श्री कानजीस्वामी जामनगर से चैत्र शुक्ला 10वीं को वांकानेर पधारे। चैत्र शुक्ला 10 वीं को सोनगढ़ के मानस्तंभ की प्रतिष्ठा को 20 वाँ वर्ष प्रारंभ हुआ था; उसी दिन वांकानेर के जिनमंदिर में चाँदी के मानस्तंभ की स्थापना पूज्य बेनश्री-बेन के शुभहस्त से (श्री हंसाबेन मुगटलाल जगजीवन की ओर से) हुई। आत्मा के सम्यक्भाव में अनंत सिद्धभगवंतों की स्थापनारूप सुंदर मंगल स्वामीजी ने सुनाया। वांकानेर तो सम्यक्त्व की साधनाभूमि है। सम्यक्त्व की उस साधनाभूमि में श्री समयसार गाथा 144 द्वारा पूज्य स्वामीजी ने सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का उपाय बतलाया। गुरुदेव के मुख से उसका श्रवण करते हुए अपनी स्व-परिचित वस्तु के श्रवण जितना आनंद होता था। प्रवचन में गुरुदेव ने कहा कि नयपक्ष-फिर वह किसी का भी पक्ष हो—उसके विकल्पों द्वारा सम्यग्दर्शन नहीं होता; बाह्य के किसी पक्ष की बात तो दूर रही, अंतर में अपने एक आत्मा के दो पक्षों में से किसी एक पक्ष के विकल्प में जो अटक जाता है, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर पाता, अर्थात् वह सच्चे आत्मा का दर्शन नहीं करता। जो समस्त नयों के पक्ष से पार है और ज्ञानस्वभाव में ही अपने मति-श्रुतज्ञान को उन्मुख करके जो शुद्धात्मा का अनुभव करता है वही सच्चे आत्मा को देखता है और वही जीव सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित होता है। वांकानेर में महावीर भगवान का जन्मोत्सव भी बड़े आनंदपूर्वक मनाया गया था; उस दिन वांकानेर के जिनमंदिर में वीर प्रभु की प्रतिष्ठा को उन्नीसवाँ वर्ष प्रारंभ हुआ। गुरुदेव ने सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग का स्वरूप समझाकर वीरप्रभु के मार्ग पर प्रकाश डाला। यहाँ उन प्रवचनों द्वारा वीरमार्ग को प्राप्त करते हुए मुमुक्षुओं को आनंद होगा।

जो पक्षातिक्रांत है, वह जीव समयसार है—अर्थात् क्या ? कि दूसरे बाहरी विकल्प तो दूर रहे, परंतु अंतर में अपने आत्मा संबंधी जो विकल्प हैं, उन विकल्पों को अपना कार्य मानकर उनके पक्ष में ज्ञान अटके तो वह ज्ञान विकल्पों से पृथक् होकर ज्ञानस्वभाव की ओर नहीं ढलता और उसे शुद्धात्मा का अनुभव नहीं होता। जब ज्ञान स्वभावोन्मुख होकर ज्ञान-परिणति सर्व विकल्पों से पृथक् हुई उसी क्षण एक अखंड आत्मा शुद्धरूप से अनुभव में आया। वह जीव पक्षातिक्रांत हुआ। वही समयसार है और सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-आनंदादि भी वही एक है, अन्य कोई नहीं।

आत्मा का ऐसा अनुभव कैसे होता है ? और वह अनुभव होने पर कैसा आत्मा दृष्टिगोचर होता है, उसका वर्णन इस समयसार की 144वीं गाथा में है। सीमंधर परमात्मा के पास से कुन्दकुन्दाचार्यदेव यह अलौकिर संदेश लाये हैं। जिसप्रकार लोगों की भीड़ को तितर-बितर हो जाने के लिये सरकार 144 वीं धारा का उपयोग करती है, उसीप्रकार यहाँ परभावों से आत्मा को भिन्न करनेवाली यह 144 वीं धारा है। आचार्यदेव की स्वानुभवरूपी लेखनी द्वारा यहाँ गई यह 144 वीं गाथा परभावों से भिन्न एक शुद्धात्मा का अनुभव कराती है।

भाई, तझे अपने आनंदस्वरूप आत्मा का अनुभव करता है न ?—तो किसी विकल्प का उसमें समावेश नहीं हो सकता। विकल्पों से भिन्न ज्ञानस्वरूप है, उसे लक्ष में ले। जो जीव पक्ष में अटक रहे हैं, उन्हें शुद्धात्मा के वेदनरूप सम्यक्त्व नहीं होता; वे तो पक्ष के विकल्प में ही अटककर उसका वेदन कर रहे हैं। आत्मा स्व से भिन्न मात्र ज्ञानस्वभावी है वह तो विकल्पों के समस्त पक्षों से पार है। ज्ञान जब इन्द्रियातीत होकर अंतरोन्मुख हुआ तब समस्त नयपक्ष के विकल्पों से पृथक् हुआ इसलिये वह पक्षातिक्रांत हुआ; कोई सूक्ष्म विकल्प भी उस ज्ञान को अपने कार्यरूप भासित नहीं होता; विकल्प से उसकी जाति ही भिन्न है। ऐसा वह ज्ञान विकल्पातीत होकर अर्थात् चैतन्यस्वभावोन्मुख होकर तुरंत महा आनंदरूप शांत चैतन्यरसरूप आत्मा का अनुभव करता है; ऐसा अनुभव हुआ वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है; वह इंद्रियातीत है—विकल्पातीत है।

आत्मा का ऐसा अनुभव करना चाहता है उस जिज्ञासु जीव ने प्रथम तो धर्मात्मा के निकट ऐसे ज्ञानस्वभाव का श्रवण किया है। विकल्प का एक अंश भी मेरे ज्ञान का कार्य नहीं

है; विकल्प के स्वाद की अपेक्षा मेरे ज्ञान की जाति ही भिन्न है—इसप्रकार ज्ञानी के निकट सुनकर लक्ष में लिया है, उसी की अभिलाषा जागृत हुई है; वह जीव प्रथम तो अंतर में अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय करता है। ज्ञान का ही निर्णय किया वहाँ ज्ञान सबसे पृथक् हो गया। राग का कोई अंश उसे ज्ञानरूप भासित नहीं होता। इसप्रकार ज्ञान और राग का निर्णय करके पश्चात् ज्ञान को इंद्रियों तथा रागादि से विमुख करके अंतर में सर्व ज्ञान को एकाग्र करता है और निर्विकल्प आत्मा का अनुभव करता है—ऐसे अपूर्व अनुभव की यह बात है। अनुभव की ऐसी बात का श्रवण भी महा भाग्य से प्राप्त होता है। आत्मा में सम्यक्त्व का नया रंग चढ़ाने की यह बात है। एकबार ऐसा आत्मा का रंग लग जाये वह जीव राग से पृथक् होकर ज्ञानस्वभाव का साक्षात् अनुभव करता ही है। विकल्पों से अत्यंत विरक्त होकर ज्ञानस्वभाव में तन्मयरूप से परिणमित हुआ वह स्वयं अपने को परमात्मारूप से अनुभव करता है और ऐसा अनुभव करनेवाला जीव अल्पकाल में साक्षात् परमात्मदशारूप मोक्ष को प्राप्त करता है।

144 वीं गाथा अर्थात् आत्मानुभव की गाथा

यह 144 वीं गाथा तो आत्मानुभव की गाथा है। आत्मा का अनुभव करनेवाला विकल्पातीत शुद्ध आत्मा कैसा है, वह यहाँ बतलाते हैं।

नय के पक्षरूप जो विकल्प हैं उनमें शुद्धता नहीं है, उनसे पृथक् होकर अंतर्मुख हुआ ज्ञान ही शुद्ध है;—ऐसा नियम बतलाकर ज्ञान और विकल्प की बिलकुल भिन्नता समझायी। दोनों की जाति ही भिन्न है। नवतत्त्वों में आत्मा कैसा है उसका स्वरूप ज्ञान ही निश्चित करता है; राग तो अलग रह जाता है; राग को अपना कार्य मानकर उसके कर्तृत्व में अटका हुआ ज्ञान चैतन्यस्वरूप आत्मा का निर्णय नहीं कर सकता। राग का विकल्प कहीं आत्मोन्मुख होकर उसका निर्णय नहीं करता। आत्मा की चैतन्यजाति से उसकी जाति ही भिन्न है। चैतन्य का निर्णय ज्ञान द्वारा ही होता है। यह तो अनंत काल में अपूर्व ऐसा सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन हो उस काल जीव की दशा की बात है। अहो! सम्यग्दर्शन धर्म कैसा है? और उसमें अंतरअनुभव की क्रिया कैसी है? उसका अलौकिक स्वरूप यहाँ वीतरागी संतों ने समझाया है। ऐसे अनुभवरूप हुए आत्मा को ही सच्चा आत्मा कहते हैं, वही सम्यग्दर्शनादि है। जो कुछ है सो यह अनुभवस्वरूप एक आत्मा ही है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव अनुभव के आनंद में झूलनेवाले महान वीतरागी दिगंबर संत दो हजार वर्ष पूर्व इस भरतक्षेत्र में हुए। वे विदेहक्षेत्र में गये और वहाँ सीमंधर परमात्मा की वाणी साक्षात् सुनकर यहाँ आये। भगवान के प्रतिनिधिरूप में महाविदेह से लाया हुआ संदेश हमें सुनाते हैं; जिससे आत्मा का सम्यग्दर्शन हो ऐसा उच्च प्रकार का यह माल है, जिसे जितनी आवश्यकता हो उतना ले ले; यहाँ तो भंडार खुला छोड़ दिया है।

सम्यग्दर्शन होने के काल में जीव के भाव कैसे होते हैं, उसकी यह व्याख्या है। आत्मा निजरस से ही अनंतगुण के अनाकुल शांत स्वादरूप परिणमित होता है। विकल्प का स्वाद रागयुक्त है और चैतन्य का स्वाद रागरहित महा आनंदरूप है; दोनों का स्वाद भिन्न है। जिसने चैतन्य का स्वाद कभी नहीं लिया था ऐसा जीव वह स्वाद लेने के लिये पहले अपने ज्ञान में कैसे आत्मा का निर्णय करता है, और फिर तुरंत आत्मा का कैसा अनुभव करता है, उसका यह वर्णन है। अहा, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के काल में संपूर्ण ध्येय बदल गया है, ज्ञानस्वभाव को ही ध्ये बनाने से विकल्परहित अकेले आनंद का स्वाद आया है। विकल्परहित ऐसे आनंद का स्वाद जीव ने पहले कभी नहीं लिया था, वह स्वाद अब सम्यग्दर्शन होने पर अनुभव में आया।

ऐसी सम्यग्दर्शनादि पर्यायरूप परिणमित आत्मा को ही यहाँ 'समयसार' कहा, उसे शुद्धात्मा कहा, क्योंकि विकल्प भिन्न हो गये परंतु शुद्ध परिणति तो अंतर की अनुभूति में अभेद हुई; विकल्प उसमें नहीं आये, क्योंकि वे विकल्प कहीं चैतन्य की जाति के नहीं हैं, विकल्प तो जड़ की जाति के हैं। ऐसे चैतन्यतत्त्व में प्रवेश करने के लिये प्रथम ज्ञानी के निकट श्रवण करके अपने ज्ञान में उसका निर्णय करना चाहिये कि ज्ञानस्वभावी तत्त्व ही मैं हूँ।—ऐसे निर्णय के बल से ज्ञान को स्वोन्मुख करके अनुभव होता है।

सम्यग्दर्शन प्रगट करनेवाला जीव प्रथम तो ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय करता है। 'आत्मा एक ज्ञायकभाव है'—ऐसा वीतरागी संतों ने श्रुत में कहा है; उसके भावश्रुत द्वारा अंतर में विकल्प से किंचित् दूर हटकर वह जीव ऐसा निर्णय करता है कि मैं ज्ञानस्वभाव हूँ; ज्ञान से अन्य कोई भाव मैं नहीं हूँ।—ऐसे दृढ़ निर्णयपूर्वक ज्ञान को स्वसन्मुख करने से आत्मा के सम्यक् स्वभाव का अनुभव होता है; वहाँ ज्ञान में कोई नयपक्ष के विकल्प नहीं रहते।

निर्णय किसका करें?—मैं ज्ञानस्वभाव हूँ ऐसा निर्णय करना चाहिये। वह निर्णय

किसके द्वारा करें ?—ज्ञान द्वारा वह निर्णय होता है; वाणी द्वारा या विकल्प द्वारा नहीं परंतु उनसे महान इंद्रियातीत ज्ञान द्वारा आत्मस्वभाव का निर्णय होता है।

भगवान के श्रुत में तो समस्त जगत का वर्णन है; परंतु उसमें मेरा प्रयोजन तो अपने ज्ञानस्वभाव के साथ है इसलिये जीव प्रथम श्रुतज्ञान द्वारा अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय करता है। जगत में अन्य तत्त्व मुझसे भिन्न हैं, उनके साथ मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, यह शरीर भी जड़ है, भिन्न है, अंतर के शुभाशुभभाव भी वास्तव में मैं नहीं हूँ। 'मैं शुद्ध हूँ' इत्यादि विकल्परूप नयपक्ष भी मेरा स्वरूप नहीं है; विकल्प से पार अनुभव में आनेवाला जो ज्ञानमात्र स्वरूप वही मैं हूँ—ऐसा मुमुक्षु जीव निर्णय करता है।

देखो, ऐसे आत्मा का जो निर्णय करायें उन्हीं देव-गुरु-शास्त्र को वह मुमुक्षु मानता है। परंतु जो ऐसा निर्णय न करायें और विपरीत कहें उन कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मुमुक्षु नहीं मानता। इसमें देशनालब्धि भी आ गई। सच्चे देव-गुरु ने ऐसा कहा कि 'आत्मा तो ज्ञानस्वभाव है, ज्ञानतत्त्व विकल्परूप नहीं है; ऐसा भेदज्ञान करके ज्ञानस्वभाव का निर्णय कर।'

अहो, मेरा आनंदधाम आत्मा, उसमें कहीं विकल्प की आकुलता नहीं है।—ऐसा निर्णय करके विकल्प से भिन्न ज्ञान को अनुभव में लो। अहा, ऐसा निर्णय करने जाये वहाँ परिणति ज्ञानस्वभाव में प्रविष्ट हो जाती है और ज्ञानस्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी परभाव में नहीं अटकती। ज्ञान और राग की भिन्नता का निर्णय करने में राग का आलंबन नहीं है, ज्ञानस्वभाव का ही अवलंबन है। अहा, एक बार अंतर चैतन्य में उतरकर ऐसा निर्णय तो कर कि ज्ञानस्वभाव ही मैं हूँ। अपने ज्ञानस्वभाव की महानता और गंभीरता लक्ष में लेते ही तू किल्प से पृथक् हो जायेगा और अपना आत्मा ही तुझे परमात्मारूप से दिखायी देगा—यही सम्यग्दर्शन है, यही समयसार है।

अनुभव से पूर्व की भूमिका में विकल्प होने पर भी ज्ञान ने उससे अधिक होकर निर्णय में लिया है कि विकल्प मैं नहीं हूँ; विकल्प से पार अखंड ज्ञानतत्त्व मैं हूँ। अनेक विकल्पों से भिन्न एक ज्ञानभाव मैं हूँ;—इसप्रकार विकल्प के काल में विकल्प से भिन्नता का निर्णय करना वह कार्य ज्ञान का है और वह ज्ञान विकल्प से अधिक है—भिन्न है। इसप्रकार अंतर के वेदन में ज्ञान और राग की बिल्कुल भिन्नता धर्मी को भासित होती है।

ज्ञानस्वभावी आत्मा का जो निर्णय है, वह निर्णय करनेवाला ज्ञान आत्मा को विकल्प से भिन्न आनंदस्वरूप से प्रकाशित करता है। आत्मा इंद्रियवाला-रागवाला है ऐसा वह ज्ञान प्रसिद्ध नहीं करता परंतु विश्व से भिन्न ज्ञान-आनंदस्वरूप परमात्मा मैं हूँ—ऐसा वह ज्ञान प्रकाशित करता है। इंद्रियज्ञान में या विकल्प में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह आत्मा को परमात्मास्वरूप में प्रकाशित करे, वह तो पर को प्रकाशित करता है। स्वतत्त्व की प्रसिद्धि में अर्थात् आनंदमय आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-अनुभव में राग का या इंद्रिय का अवलंबन नहीं है।

आत्मा से भिन्न कोई बाह्य पदार्थ—भगवान या गुरु—वे भी पर पदार्थ हैं; उन पर की ओर उन्मुख ज्ञान आत्मा को उनसे भिन्न प्रसिद्ध नहीं करता। आत्मा को प्रसिद्ध करने के लिये ज्ञान की बुद्धि को पर की ओर से विमुख करके ज्ञानस्वभाव में लाने की यह बात है। इस विधि से जिसे सम्यग्दर्शन हुआ वह तो भगवान हो गया। इंद्रियज्ञान या मन के विकल्प वे कहीं आत्मा का अनुभव नहीं कर सकते, इसलिये उनसे अपनी बुद्धि को विमुख कर और अपने उपयोग की सर्वशक्ति को अखंडरूप से आत्मस्वभाव की मर्यादा में लाकर अनुभव कर... इसप्रकार ज्ञान अंतरोन्मुख होने से तुरंत ही निर्विकल्व विज्ञानघन आत्मा अनुभव में आयेगा वही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान है; उसी को 'समयसार' और 'पक्षातिक्रांत' कहते हैं।

इंद्रियातीत ज्ञान की भूमिका में आनंद का अनुभव पकता है, परंतु विकल्प की भूमिका में आनंद का अनुभव नहीं पकता। जिसप्रकार तीर्थंकर समान रत्न उनकी माता के उदर में ही पकते हैं अन्यत्र नहीं पकते; उसीप्रकार चैतन्य के अनुभवरूपी सम्यक्त्वादि आनंदरूप रत्न विकल्प में या इंद्रियज्ञान में नहीं पकते; इंद्रियातीत—विकल्पातीत स्वसन्मुख ज्ञान में ही वे पकते हैं। (चाँपा का दृष्टांत—)

अरे, महा आनंदरूप अतीन्द्रिय चैतन्यतत्त्व को साधने में तो कितनी अलौकिक पात्रता होती है! जिसप्रकार चाँपा अपनी माता की सांसारिक चेष्टा को नहीं देख सका और तुरंत अपना मुँह फेर लिया; उसीप्रकार सवानुभव करनेवाला यह चैतन्य-चाँपा परभावों से अपना मुँह फेर लेता है, एक विकल्प के अंश को भी वह चैतन्यभाव में नहीं देख सकता; विकल्पों को चैतन्य से भिन्न का भिन्न देखता है और उनसे मुँह फिराकर ज्ञान को आत्मोन्मुख करता है। ऐसे 'चाँपे' कहीं घर-घर में पैदा नहीं होते, व अपनी वैसी माता के उद से ही जन्म लेते हैं... और माता भी

कैसी ?—कि जब चाँपा ने मुँह फेर लिया तब उसे देखकर वह इतनी लज्जित हुई कि जलकर मर गई। इतनी तो उसमें व्यावहारिक कुलीनता थी!.... ऐसी माता के उदर से चाँपा जन्म लेता है। उसीप्रकार चैतन्यानुभव का कामी जीव बाह्यवृत्ति के एक अंश को भी अपने में सहन नहीं कर सकता; शुभ विकल्प के अंश की भी मिठास जिसे रह जाती है, वह जीव चैतन्यानुभवरूपी चाँपा को जन्म नहीं दे सकता। भाई, विकल्प के उदर से चैतन्यामृत की उत्पत्ति नहीं होती! वह तो चिदानंदस्वभाव की सन्मुखतारूप अतीन्द्रिय ज्ञान से ही होती है।

यहाँ तो आत्मा का सीधा अनुभव कैसे हो? अथवा सम्यग्दर्शन कैसे हो?—उसका वर्णन है। भाई! आत्मा के अनुभव की ऐसी उत्तम बात सुनने को तू आया, ऐसी वीतरागी बात सुनानेवाले देव-गुरु को तूने माना, इसलिये शुभ विकल्प तक तो तू आ ही गया है; परंतु अब उस शुभविकल्प के पक्ष में अटकेगा तो तुझे आत्मप्राप्ति नहीं होगी। अंतरोन्मुख जो परमशांतरसरूप ज्ञान, उसमें विकल्पों की आकुलता नहीं चल सकती। ज्ञान का वेदन करने से वह आकुलता दूर हो जाती है और आत्मा निराकुल परमसुखरूप से अनुभव में आता है।

अहा, चैतन्यतत्त्व को पकड़नेवाले ज्ञान की परम सूक्ष्मता! उसके निकट नयपक्ष के विकल्प तो अत्यंत स्थूल लगते हैं, उन स्थूल विकल्पों में अतीन्द्रिय चैतन्य को पकड़ने की शक्ति नहीं है। ज्ञान को इन्द्रियों से भिन्न करके, विकल्पों से पृथक् करके आत्मोन्मुख कर तब निजरस से प्रगट होनेवाला ऐसा अपना परम आत्मतत्त्व तुझे सच्चे स्वरूप में दृष्टिगोचर होगा और साक्षात् अनुभव में आयेगा। यही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान वह आत्मा ही है; वह किसी नयपक्ष द्वारा खंडित नहीं होता; विकल्प उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकते। ऐसे सम्यक्भावरूप से परिणमित आत्मा समस्त जगत पर तिरता है; किन्हीं परभावों से या संयोग से उसका ज्ञान दबता नहीं है परंतु पृथक् का पृथक् ज्ञानरूप ही रहता है इसलिये वह तिरता है। अहा, ऐसी अनुभवदशा की जगत को खबर नहीं है। पहाड़ पर बिजली गिरे और दो टुकड़े हो जायें, तो फिर वे जुड़ते नहीं हैं; उसीप्रकार स्वसन्मुख ज्ञानरूप बिजली द्वारा ज्ञान और राग की भिन्नता होकर दो टुकड़े हुए वे फिर कभी एक नहीं होते; विकल्पों से ज्ञान भिन्न परिणमित हुआ वह कभी विकल्पों के साथ एक होकर परिणमित नहीं होता, भिन्न का भिन्न ही रहता है। ज्ञानी का ज्ञान तो सदा विकल्प से भिन्न ही है, ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा का

अनुभव तो सातवें नरक के प्रतिकूल संयोगों के बीच भी जीव कर सकता है।—ज्ञान की दशा को अंतर में आनंदसागर की ओर मोड़ दिया वहाँ संयोग संयोग में रह गये; सातवें नरक के संयोगों में भी जहाँ ज्ञान को अंतरोन्मुख किया कि तत्काल महा आनंद का अनुभव होता है। आनंद तो अपने में भरा है, उसमें उपयोग लगाये इतनी देर है... भाई, तेरे इस चैतन्यसरोवर के अतिरिक्त सच्ची शांति का जल तुझे अंयत्र कहीं नहीं मिलेगा। राग के विकल्प तो मृग-मरीचिका जैसे हैं, उनसे तेरी तृषा शांत नहीं होगी, उसमें तुझे शांति नहीं मिलेगी।

भाई, तुझे अपने आत्मा की शांति कैसे प्राप्त हो उसकी यह बात संत तुझे सुनाते हैं, तू यह बात प्रेम से सुन तो सही! सुनकर फिर उसे अंतर में उतारना तेरे अपने हाथ में है कहीं सुनानेवाले संत वह नहीं करा सकते। परंतु अभी तो जिसे सुनने जितना और लक्ष में लेने जितना धैर्य न हो वह अंतर-अनुभव का प्रयोग कब करेगा? अरे, चैतन्य के अनुभव में तो कितना धैर्य है! ज्ञान की कितनी गंभीरता है! चैतन्योन्मुख हुआ वहाँ आत्मा स्वयं ही अपनी चैतन्यशक्ति के निजरस से प्रगट होता है, अपनी शक्ति से ही वह सम्यक्त्वादिरूप तथा आनंदरूप परिणमित हो जाता है। अहा, चैतन्यसमुद्र अंतर से स्वयं ही पर्याय में उल्लसित होता है, उसमें कोई बाह्यकारण नहीं है, कोई विकल्प वहाँ नहीं रहते।

अहा, आत्मानुभव की ऐसी बात तीर्थंकर भगवान के मुख से सुनकर तो इंद्र, गणधर और चक्रवर्ती जैसे भी आनंद में झूलने लगते हैं कि वाह! चैतन्य के इस अपूर्व वैभव के समक्ष हमारा देवलोक का वैभव तो अत्यंत तुच्छ है! इंद्रादि भी स्वयं सम्यक्त्वी हैं और स्वयं को प्रगट हुई उस चैतन्यऋद्धि का वर्णन भगवान के मुख से सुनकर आनंदित होते हैं कि वाह! अपना ऐसा अपूर्व निधान हमने अपने में देख लिया है, और वही बात संत सुनते हैं।

अहा, चैतन्य के अनुभव की कथा कैसी अद्‌भुत है! इंद्र जिसे सुनने के लिये स्वर्ग से मनुष्य-लोक में आते हैं वह कथा कोई 'चिड़ी-चिड़े की कहानी' जैसी होगी? भाई, यह तो भगवान का अपूर्व मार्ग है; भगवान का मार्ग अर्थात् तेरे आत्मस्वभाव का अपूर्व मार्ग है। अभी तक तूने इस मार्ग को भूलकर अन्य प्रकार से मोक्षमार्ग मान लिया था, परंतु उसमें कहीं तेरे भव का अंत नहीं आया, अब एकबार इस मार्ग में आ...! तुझे अपना आत्मा ऐसा दिखायी देगा कि मैं समस्त संसार से अत्यंत भिन्न हूँ; चैतन्यरस का समुद्र आत्मा में उल्लसित होता है और स्वयं

अपने आत्मरस से ही नयपक्षों को लाँघकर निर्विकल्पभाव को प्राप्त कर लेता है। ज्ञान अंतर्मुख हुआ वहाँ आत्मा शीघ्रता से अपने महानंदस्वरूप में प्रगट होता है—परमात्मस्वरूप में प्रसिद्ध होता है। जगत का सर्वोच्च ऐसा परम आत्मतत्त्व मैं हूँ—ऐसा धर्मी अनुभव करता है। ज्ञानरस से उल्लसित यह भगवान स्वानुभव में प्रगट हुआ—उसे सम्यग्दर्शन कहो, ज्ञान कहो, आनंद कहो, परमात्मा कहो—अनंत गुणों का निर्मल रस उसमें एकसाथ उल्लसित होता है। ऐसे आत्मा का निभृत पुरुष-आत्मलीन आत्मरसिक जीव अनुभव करते हैं। अहो, यह अनुभूति अद्भुत है। विकल्प द्वारा उसकी महिमा का पार नहीं पाया जा सकता।

अहा, आनंद का स्वामी आतम स्वयं प्रसिद्ध हुआ वहाँ अब दुःख कैसा? और कर्म कैसे? अनादि से अज्ञानी रहकर विकल्प का विष पिया था, अब तो मैं स्वयं पूर्णानंदस्वरूप परमात्मा हूँ—ऐसे निर्विकल्प वेदन द्वारा चैतन्यामृत का पान किया; आत्मा जैसा है वैसा सत्य दृष्टिगोचर हुआ, वही सम्यग्दर्शन है। पूर्ण आत्मा जैसा है वैसा उसने देख लिया, जान लिया; वह पक्षातिक्रांत हो गया। सम्यग्दर्शन पर्यायरूप हुए उस आत्मा को 'समयसार' कहा जाता है; उसे परम-आत्मा कहते हैं, उसे भगवान कहते हैं। वही जगत में सुखी संत है।

आत्मा के ऐसे अनुभव की महिमा का आगम में गुणगान किया है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और आनंद उनका इस अनुभव में ही समावेश होता है; वे अनुभव से भिन्न नहीं हैं। मोक्षमार्ग का समावेश भी इसी अनुभव में होता है।—

अनुभव चिंतामणि रतन, अनुभव है रसकूप;
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।

—ऐसे अनुभववान सम्यग्दृष्टि का अंतर जगत से न्यारा है।

वर्द्धमानपुरी में पूज्य स्वामीजी द्वारा दिया गया वीर प्रभु का सन्देश

ढाई हजार वर्ष पूर्व वीर-वर्द्धमान भगवान जहाँ साक्षात् विचरे थे, ऐसी पावनभूमि में वीरनाथ का मंगल संदेश सुनाते हुए स्वामीजी ने कहा कि—यह आत्मा अपने ज्ञान-आनंदस्वभाव के साथ एकतवरूप है और रागादि विभावों से विभक्त है, ऐसा एकत्व-विभक्त आत्मा मंगलरूप है और उसकी बात सुनना, वह भी मंगलरूप है। एकत्व-आनंदस्वरूप ज्ञायक आत्मा है, वह सुंदर है, वह मंगल है; उसकी श्रद्धा करना वह मंगल है और प्रेमपूर्वक उसका श्रवण करना वह भी मंगल है।

स्वागत-प्रवचन में वढवाण के श्री गिरधरभाई शाह ने कहा कि हमारी इस वर्द्धमानपुरी (वढवाण) में महाभाग्य से हमें यह बात सुनने को मिली है। यह बात सुनते हुए हृदय में जो भाव जागृत होते हैं, उन्हें मैं वचन द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। अभी तो इंद्रियज्ञान द्वारा लक्ष में लेने पर जो शांति मिलती है, संसार में जय-पराजय, मान-अपमान जैसे प्रसंगों पर भी जो शांति रह सकती है, वह भी मैं नहीं कह सकता, तो फिर अतीन्द्रिय-ज्ञान द्वारा लक्ष में लेकर अनुभव करने पर शांति होगी उसकी तो बात ही क्या!

गिरधरभाई ने सच ही कहा है... और जिसे सच्ची आत्मशांति की अभिलाषा हो, उस मुमुक्षु को अतीन्द्रियज्ञान द्वारा अपने अंतर की वस्तु में प्रवेश करना है। जो जीव स्ववस्तु में पहुँचा, वही विजेता हुआ। जगत में श्रेष्ठ ऐसा सच्चा निजपद उसने प्राप्त कर लिया। ऐसे निजपद का स्वरूप पूज्य स्वामीजी ने 11 वीं गाथा द्वारा यहाँ बतलाया है। वद्धमानपुरी जो कि भगवान महावीर की विहारभूमि है, वही पूज्य श्री चंपाबेन की जन्मभूमि है। ऐसे इस पावनधाम में वीरप्रभु का संदेश झेलते हुए मुमुक्षुओं को आनंद होता था। वैशाख कृष्णा अष्टमी को यहाँ के जिनमंदिर को उन्नीसवाँ वर्ष प्रारंभ हुआ। उस वर्द्धमानपुरी में स्वामीजी का संदेश पढ़कर आपको आनंद होगा।

सम्यग्दर्शन क्या है, उसका वर्णन इस 11वीं गाथा में है। अनंतकालीन संसार प्रवाह में जीव को मनुष्यपना भी अनंत बार प्राप्त हुआ है, परंतु देह से भिन्न, राग से पार अपना जो सत्य ज्ञानस्वरूप है; उसकी पहिचान जीव ने कभी नहीं की, इससे उसका संसार-भ्रमण नहीं मिटा। अज्ञान को टालकर आत्मा की पहिचान कैसे हो, उसकी यह बात है।

अहा, यह आत्मा तो भगवान है, परमात्मा होना उसका स्वभाव है। जो रागादिभाव हैं, वे तो दु:खरूप; चेतनस्वभावी भगवान आत्मा उनसे अत्यंत भिन्न, सुखरूप, सदा सर्वज्ञ-स्वभावी पवित्र है।

आत्मा अतीन्द्रिय सुख से भरपूर है; उसके सन्मुख होने से रागादिरहित ज्ञानस्वभावरूप से आत्मा अनुभव में आता है। ऐसे आत्मा का अनुभव, वह शुद्ध का अनुभव है और वह भूतार्थ है; रागादिभाव उसमें अभूतार्थ हैं। शुद्धनय के अनुभव में रागादि हैं ही नहीं; गुण-पर्याय के भेद भी उस अनुभव में नहीं हैं। भेद के विकल्परहित एकाकार ज्ञायकवस्तु का अभेद अनुभव, सो सम्यग्दर्शन है और उसके साथ चैतन्य का अतीन्द्रिय आनंद है। उस अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद के निकट तो सारी दुनिया नीरस जैसी लगती है। ऐसे चैतन्य की अनुभूति में भेद दिखायी नहीं देते; इसलिये उन्हें अभूतार्थ कहा है। आत्मा में गुण-पर्याय हैं ही नहीं—ऐसा 'अभाव' मानकर अभूतार्थ नहीं कहा; गुण-पर्यायें तो विद्यमान हैं परंतु शुद्ध ज्ञायकभावरूप एक अभेद तत्त्व के अनुभव में उन गुण-पर्यायों के भेद दिखायी नहीं देते, इसलिये उन्हें 'गौण' करके अभूतार्थ कहा है। ऐसे आत्मा को जानना, सो सम्यग्दर्शन है। अरे, अपने ऐसे गंभीर चैतन्यतत्त्व का पहले लक्ष तो केन्द्रित करो। सत् का सच्चा लक्ष करके उसे अनुभव में लेने से सम्यग्दर्शन होता है और अतीन्द्रिय आनंदरूप से आत्मा का स्वाद आता है। यह अत्यंत मधुर चैतन्यरस, जगत के सर्व रसों से विलक्षण है, उसका स्वाद जीव ने सम्यग्दर्शन से पूर्व कभी नहीं लिया था, वह सम्यग्दर्शन में आया, वहाँ जगत के सर्व रस उसे रूखे-नीरस मालूम होने लगे।

अरे जीव! तेरा सच्चा स्वरूप क्या है, उसे तू विचार की धारा में तो ले! भाई, अनेक जीव छोटी-छोटी उम्र में आयु पूर्ण करके चले जाते हैं... ऐसे मनुष्य-अवतार और सत्संग के अवसर में भी आत्महित के लिये करनेयोग्य कार्य यदि नहीं किया तो फिर कब करेगा? अरे, भव के दु:ख की जलन होना चाहिये कि—ऐसे भव-दु:ख अब इस आत्मा को न हों! आत्मा के आनंद का स्वाद जिसमें न आये, वह मेरा स्वरूप नहीं है—ऐसा समझकर उसका रस छोड़, और रागादि रहित जो अंतर का चैतन्यतत्त्व है, उसे लक्ष में-अनुभव में ले, तो तेरे भवदु:ख का

अंत आ जायेगा और तुझे चैतन्यसुख का अपूर्व स्वाद आयेगा। ऐसे सुख का जिसमें अनुभव हो, वही भगवान महावीर का मार्ग है।

चैतन्य के सन्मुख होकर उसका अनुभव करने से राग बाहर रह गया और ज्ञानपरिणति अंतर में अभेद हो गई; इसलिये वहाँ रागादिभाव या भेद के विकल्पोंरूप व्यवहार नहीं रहा। इसप्रकार शुद्ध आत्मा का अनुभव करने से समस्त व्यवहार अभूतार्थ है। ऐसा तेरा आत्मतत्त्व विद्यमान है—वह सर्वज्ञ परमात्मा ने बतलाया है। वर्द्धमान भगवान ढाई हजार वर्ष पहले भरतक्षेत्र में दिव्यध्वनि से ऐसा आत्मा प्रकाशित कर रहे थे और वर्तमान में भी मनुष्य-क्षेत्र में विदेह में श्री सीमंधर परमात्मा आदि साक्षात् तीर्थंकर भगवंत दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा ही आत्मा प्रकाशित कर रहे हैं तथा धर्मी जीव वैसे आत्मा का अपने में अनुभव कर रहे हैं। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने वहाँ जाकर सीमंधर परमात्मा की वाणी सुनी थी; स्वयं शुद्धात्मा का साक्षात् अनुभव करके अपूर्व आनंदरूप निजवैभव प्रगट किया था; और वही शुद्धात्मा उन्होंने इस समयसार में बतलाकर भरतक्षेत्र के जीवों पर महान उपकार किया है।

आत्मा के शुद्धस्वभाव को अनुभव में लेनेवाला शुद्धनय अभूतार्थ है; उसका आश्रय करने से सम्यग्दृष्टि हुआ जा सकता है। शुद्धनय द्वारा अपने शुद्धस्वभाव को जब तक जीव न जाने और व्यवहार में मग्न रहे अर्थात् पर्यायभेद-राग-विकल्प में मग्न रहे, तबतक सच्चा आत्मा उसके ज्ञान में या श्रद्धा में नहीं आता अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नहीं होता। जीव ने अनादि से शुद्धवस्तु को कभी नहीं जाना। शुद्धनय द्वारा शुद्धवस्तु को जाने—अनुभवे, तभी जीव का कल्याण होता है। इसलिये श्रीगुरु ने जीवों के हित के लिये शुद्धनय के ग्रहण का उपदेश दिया है और व्यवहार का अवलंब छुड़ाया है।—ऐसा करने से अंतर में अतीन्द्रिय आनंद का वेदन होता है।—यही धर्म का चिह्न है। अंतर में अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आये बिना धर्म नहीं होता।

राग का, भेद के विकल्प का अनुभव जीव को अनादि से है, अज्ञान के कारण उसी को वह आत्मा मान रहा है। भाई! तेरा भगवान, तेरा आत्मा राग जितना नहीं है, विकल्प में प्राप्त हो जाये, ऐसा तेरा आत्मा नहीं है। आत्मा तो अनंत महिमा का भंडार है; उसे स्वसंवेदन में लेने से शुद्धनय प्रगट होता है और सर्व विकल्पों से आत्मा पृथक् हो जाता है।—अनंत गुणों से एकरूप, एकरसरूप आत्मा अनुभव में आता है, उसमें अतीन्द्रिय आनंद है, वही सम्यग्दर्शन और जैनधर्म का प्राण है, ऐसा वीर प्रभु का संदेश है।●●

श्रावक की धर्मदृढ़ता

तं देशं तं नरं तत्स्वं तत्कर्माण्यपि नाश्रयेत्।
मलिनं दर्शनं येन येन च व्रतखंडनम्॥26॥

अपने सम्यक्त्वादि धर्म की जिसमें रक्षा न हो, सम्यक्त्व और व्रत में मलिनता का कारण हो, ऐसे देश, पुरुष और धन-वैभव आदि का संबंध धर्मी छोड़ देते हैं। समाज प्रतिकूलता करे तो भी धर्मी जीव अपनी श्रद्धा से कभी डिगते नहीं हैं। जिससे श्रद्धा आदि में दोष लगे, उस धन को धर्मी जीव छोड़ देते हैं। भले ही प्रतिकूलता हो, धर्म कहाँ उसके आधार से है? धर्मी जीव अपने धर्म से कभी डिगते नहीं हैं। नरक की घोर प्रतिकूलता के बीच भी धर्मी जीव अंतर की चैतन्यदृष्टि को स्थित रखते हैं। माता-पिता-भाई-बहिन कोई भी हो, यदि धर्म में प्रतिकूलता करते हों तो धर्मी जीव उनका आश्रय छोड़ देते हैं। ऐसे मनुष्यों का संग वे छोड़ देते हैं। करोड़ों की संपत्ति मिलती हो, तथापि धर्मी जीव अपनी श्रद्धा से च्युत नहीं होते। कभी ऐसा भी बनता है कि किसी पक्ष के लोग कहें कि हमारे यहाँ रहकर तुम्हारा यह धर्म नहीं पल सकता, अथवा हमारा ही धर्म तुम्हें पालना होगा—तो ऐसे पुरुषों या स्त्रियों का संग धर्मी जीव छोड़ देते हैं। अपने धर्म की रक्षा में धर्मी जीव सदैव तत्पर हैं, उसमें दुनिया का साथ हो या न हो, उसकी परवाह उन्हें नहीं होती। किसी अनार्य देश में जहाँ भोजन की शुद्धता न रह सके, जहाँ देव-गुरु न मिलें, जैनधर्म का पालन न हो सके—ऐसे कुक्षेत्र में लाखों-करोड़ों की आय होती हो, तो भी धर्मी जीव ऐसा क्षेत्र, ऐसे मनुष्यों का सहवास, व्यापार तथा समस्त कार्यों को छोड़ देते हैं और जिसप्रकार अपने श्रद्धा आदि धर्मों की पुष्टि हो, तदनुसार करते हैं।

(फतेपुर में पद्मनन्दि-श्रावकाचार के प्रवचनों से)

चैतन्यरस का मधुर स्त्रोत

फतेपुर (गुजरात) के प्रवचनों का दोहन

फतेपुर (गुजरात) में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव आदि अनेक मंगल-उत्सवों के निमित्त पूज्य स्वामीजी द्वितीय वैशाख कृष्णा 4 से द्वितीय वैशाख शुक्ला 4 तक (15 दिन) फतेपुर में विराजमान रहे। उन दिनों श्री समयसार गाथा 6, 7, 11 तथा पद्मनंदिपच्चीसी के उपासक-संस्कार अधिकार पर जो प्रवचन हुए, उनका सार यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। प्रवचनों में प्रवाहित चैतन्यरस का मधुर स्त्रोत हजारों जिज्ञासुओं को तृप्त करता था। आत्मधर्म के पाठक भी उसकी शीतल वायु से संतुष्ट होंगे। पूज्य स्वामीजी की 83वीं जन्म-जयंती के अवसर पर यहाँ 83 बोल दिये हैं। (ब्रह्मचारी हरिलाल जैन)

* 'हम पर कृपा करके श्रीगुरु ने हमें शुद्धात्मा का उपदेश दिया है और उसके अंतर-अनुभव द्वारा हमें आत्म-आनंद के वेदनरूप निजवैभव प्रगट हुआ है। उस निजवैभव के द्वारा मैं इस समयसार में शुद्ध आत्मा बतलाता हूँ'—ऐसा कहकर आचार्यदेव छठवीं गाथा में शुद्धात्मा का स्वरूप दिखलाते हैं।

* सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में भी आत्मा के अनंत गुणों की शुद्धता का अंशतः स्वसंवेदन होता है। अतीन्द्रिय आनंदरूप निजवैभव भी उसे प्रगट हुआ है; लेकिन मुनि-भगवंतों को तो प्रचुर स्वसंवेदन से अत्यंत आनंद का वेदन वर्तता है।

* धर्मी जीव जानते हैं कि हमें अपने आत्मा का आनंद प्रगट हुआ है। उसका हमें वेदन वर्त रहा है। अपना अचिंत्य निजवैभव हमने अपने आत्मा में देखा है। और जो निजवैभव शुद्ध आनंद की वर्तमान दशा में वर्तता है, उस वैभवपूर्वक हम शुद्धात्मा का स्वरूप बतलाते हैं। मात्र भगवान ने कहा, उससे नहीं, परंतु अपने अंतर के स्वसंवेदन से संत शुद्धात्मा दर्शाते हैं।

* शुद्धात्मा दर्शानेवाले संत स्वयं उसका अनुभव करनेवाले हैं। वे कहते हैं कि मैं अपने शुद्धात्मा के अनुभवरूप वैभव से शुद्धात्मा दिखलाता हूँ और तुम उसे अपने स्वानुभव से प्रमाण करना।

* जिसे शुद्धात्मा के अनुभव की जिज्ञासा है और उसका स्वरूप समझने को उमंग है, वह श्रीगुरु के पास जाकर पूछता है।—उसे आचार्यदेव आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं—

* अहो, आत्मा के स्वरूप को समझने की जिसे जिज्ञासा जागृत हुई है, ऐसे शिष्य को यहाँ समझाते हैं कि हे भव्य! आत्मा का अंतरतत्त्व शुद्ध ज्ञायकभाव है। वह ज्ञायकभाव शुभाशुभराग से रहित है। ऐसे आत्मा को स्वीकार करते ही पर्याय भी उसमें उन्मुख होकर शुद्धात्मा का सेवन करती है और तब उस जीव को शुद्धात्मा कहते हैं। सिर्फ शब्दों की धारणा से 'शुद्ध-शुद्ध' कहे, उसकी बात नहीं है; लेकिन शुद्ध कहने से द्रव्य के आत्मलाभ पर जिसकी दृष्टि गई, उसे पर का लक्ष तो छूट ही गया और अपने में पर्याय के भेदों का भी लक्ष छूट गया। अंतर्मुख होकर जिसने ऐसा अनुभव किया, उसे 'शुद्ध' कहते हैं।

* अहा, ऐसे शुद्ध तत्त्व का स्वरूप जो प्रेम से श्रवण करते हैं। वे अवश्य ही अल्प काल में मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जीवों ने इस अनादि संसार में शुद्धात्मा के विरुद्ध राग-द्वेष-मोह की बात अनंतबार सुनी है।

* **प्रश्न**—अनेक जीव तो ऐसे हैं जिन्हें अभी तक कर्णेन्द्रिय भी प्राप्त नहीं हुई है, तो उन्होंने किसप्रकार रागादि की बात सुनी होगी?

  उत्तर—शब्द भले ही न सुने हों, लेकिन उनके श्रवण का कार्य जो रागादि का अनुभव, वह कार्य वे कर रहे हैं, चैतन्य को भूलकर राग का ही अनुभव कर रहे हैं, इसलिये वे राग की ही कथा का श्रवण करनेवाले हैं। और शुद्धात्मा की कथा का श्रवण जीव ने पूर्व में कभी भी नहीं किया है।

* **प्रश्न**—अनंतबार भगवान के समवसरण में जाकर आत्मा की बात सुनी है, तथापि कभी श्रवण नहीं किया, ऐसा क्यों कहा?

  उत्तर—क्योंकि शुद्धात्मा के सन्मुख होकर उसका कभी अनुभव नहीं किया। इसलिये

वास्तव में उसने शुद्धात्मा की बात नहीं सुनी है। सच्चा श्रवण तब कहा जाता है, जब उसका अनुभव करे। जिसका प्रेम किया, जिसका अनुभव किया, उसी का श्रवण किया कहा जाता है।

* इसलिये कहते हैं कि हे भाई! इस शुद्धात्मा की बात का अपूर्व श्रवण तुझे मिला है, उसे श्रवणमात्र ही न रखना परंतु उसका अनुभव करना। जिसे दृष्टि में लेने से अपूर्व सम्यग्दर्शन और आनंद प्रगट हो, ऐसे शुद्धात्मा की बात तुझे आत्मा के वैभव से सुनाते हैं। पर का लक्ष छोड़कर आत्मा के ज्ञायकस्वभाव को लक्ष में लेकर उसकी उपासना करना। ऐसी उपासना करे, उसे शुद्ध कहते हैं।

* ज्ञायकस्वभाव के लक्ष से पर्याय में जब शुद्धतारूप परिणमित हुआ, तब ज्ञात हुआ कि 'मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ'। ज्ञान प्रगट हुआ, उसमें स्वज्ञेय का भान हुआ; ज्ञान में स्वज्ञेय आये बिना 'यह शुद्ध है' ऐसा किसने स्वीकार किया? त्रिकाल शुद्ध आत्मा को स्व-ज्ञेयरूप जिसने स्वीकार किया उसकी दृष्टि पर से, राग से और पर्यायभेद से हटकर अन्तरोन्मुख हुई और अतीन्द्रिय आनंद का नमूना अंतर में से निकालकर अनुभव किया। आनंद का रसकूप खोलकर उसके स्वाद का पर्याय में अनुभव किया—ऐसा अनुभव, वह अपूर्व मंगल है, वह मोक्ष के लिये माणिकस्तंभ है। इसप्रकार आत्मा में मोक्ष के माणिकस्तंभ की स्थापना के साथ मंगल-उत्सव का प्रारंभ होता है।

* * * *

* ज्ञायकतत्त्व को जाननेवाले—अनुभवनेवाले ज्ञानी राग को जानते हैं, तथापि उनके ज्ञान में राग की उपाधि नहीं है। ज्ञान राग का नहीं, ज्ञान तो ज्ञान ही है, ज्ञानरूप ही ज्ञान प्रकाशमान होता है, कहीं रागरूप प्रकाशित नहीं होता। चैतन्य का स्व-पर प्रकाशकपना प्रगट हुआ, वह स्वज्ञेय को प्रकाशते हुए भी ज्ञायक ही है। ज्ञानी का ज्ञानभाव राग से भिन्न का भिन्न ही रहता है।

* ऐसे ज्ञायक आत्मा की कथा वह धर्मकथा है और ऐसी धर्मकथा जो वास्तव में श्रवण करता है, उसे अपने में धर्म प्रगट हुए बिना नहीं रहता। ऐसा धर्म ही वीतराग भगवान के द्वारा कहा हुआ धर्म है, और वह धर्म उत्कृष्ट मंगल है।

* जिन्हें 'शुद्ध आत्मा' जानना है, उनके लिये यह बात है। जगत के अन्य तत्त्व कैसे हैं? अथवा पुण्य-पाप आदि अशुद्धभाव कैसे हैं—वह जानने की अभिलाषा नहीं लेकिन परभावरहित मेरा शुद्ध आत्मा कैसा है, उसे जानने की जिज्ञासा है—उसके लिये आचार्यदेव यहाँ निज आत्मा के वैभव से आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं।

* चैतन्यभाव अनादि से स्वयंसिद्ध सत् है, अनंत काल स्थिर रहनेवाला है और जब देखो तभी वर्तमान में सदैव उद्योतमान है, ऐसा चैतन्यभाव आत्मा वह स्पष्ट-प्रकाशमान ज्योति है, स्वयं अपने को प्रकाशने में—जानने में—वेदन करने में अन्य किसी की या राग की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसे एकस्वभावरूप आत्मा को लक्ष में लेकर अनुभव करने से वह शुभ-अशुभ कषायरहित शुद्धरूप अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव करनेवाला कहता है कि 'मैं एक शुद्ध ज्ञायकभाव हूँ' चौथे गुणस्थान में मति-श्रुत के स्वसंवेदन में आत्मा प्रत्यक्ष हो गया है।

* राग के कण में जिसकी रुचि और दृष्टि रुक गई है, उस जीव को अखंड पर्वत समान ज्ञायकस्वभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। जो अपने को एक ज्ञायकस्वभावरूप देखते हैं, उन्हें कषायरहित परम शान्तरस से भरपूर आत्मा अनुभव में आता है। ऐसे आत्मा को देखनेवाली दृष्टि में रागादि नहीं और पर्यायभेद, गुणभेद के विकल्प भी नहीं। आत्मा बंधनयुक्त है या बंधनरहित—ऐसे बंध-मोक्ष के विकल्प शुद्धद्रव्य की अनुभूति में नहीं हैं।

* आत्मा के स्वभाव की यह सूक्ष्म बात है, समझ में आने जैसी है। 'समझना' वह तो ज्ञान का स्वरूप है, वह कहीं राग का स्वरूप नहीं। सच्ची समझ, वह कहीं राग का कार्य नहीं, वह तो ज्ञान का कार्य है। तो फिर ज्ञानस्वरूप आत्मा अपना स्वरूप को क्यों नहीं समझेगा? स्व-पर को समझने की सामर्थ्य कहीं राग में नहीं है, क्योंकि उसमें चेतना-स्वभाव नहीं है। आत्मा स्वयं अपने स्वरूप को कषायों से भिन्न अनुभव करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्यायरूप परिणमित होता है। निर्मल पर्याय में स्थित आत्मा को स्वसमय कहते हैं, उसी को शुद्ध कहते हैं। रागादि में अपनत्व जानकर उसमें जो स्थित है, वह परसमय है। जो राग में स्थित है, उसे जड़ में स्थित कहा है, क्योंकि राग में चेतनता नहीं है परन्तु जड़ता है।

* विकल्प ज्ञान से भिन्न है। अत: उसे जड़ कहा है। भले ही ज्ञानी का विकल्प हो या अज्ञानी का, वह कहीं ज्ञान की जाति का नहीं है। ज्ञान से विरुद्ध है, इसलिये वह जड़ है। जो ज्ञानस्वभाव को अनुभव में ले, उसी को विकल्प का अचेतनपना वास्तव में समझने में आता है। जो विकल्प रहित ज्ञान को नहीं देखते, उन्हें तो सदैव शुभ-अशुभभाव का कषायचक्र ही चलता रहता है। अशुभ में से शुभ हो, वह कहीं नया नहीं है, शुभ और अशुभ का कषायचक्र तो निगोद के जीवों को भी चला करता है लेकिन कषायों से बिलकुल भिन्न जाति का ज्ञानस्वभाव है, उसे अनुभव में लेना, वह अपूर्व है।

* 'ज्ञायकभाव' में सदा एकरूपता है। शुभाशुभभावों में अनेकरूपता है। शुभ या अशुभ कोई भाव एकरूप नहीं रहता; इसप्रकार अनेकरूप शुभाशुभभाव का जो कषायचक्र है, उसरूप एक ज्ञायकभाव नहीं होता; ज्ञायकभाव को सदैव एक ज्ञायकभावपना ही है। ऐसे ज्ञायकभाव द्वारा आत्मा की उपासना करना अर्थात् अनुभव में लेना—वह 'शुद्ध' है। ज्ञान की किरण सदा ज्ञानरूप है, ज्ञान की किरण रागरूप नहीं। जैसे सूर्य की किरण प्रकाशरूप है, अंधकाररूप नहीं; उसीप्रकार चैतन्यसूर्य भगवान आत्मा अनंत ज्ञानकिरणों से प्रकाशमान है, वह कषाय की कलुषता नहीं है। इसप्रकार जो अपने को कषाय से भिन्न आनंदस्वरूप-ज्ञायकभावरूप अनुभव करता है, उसी ने आत्मा को 'शुद्ध' जाना है।

* आप फतेपुर पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा-महोत्सव के प्रवचन पढ़ रहे हैं। दोपहर में पद्मनन्दि-पच्चीसी में से 'उपासक संस्कार' (श्रावकाचार) अधिकार पर प्रवचन होते हैं; उसमें श्रावक के आचार का वर्णन है। इस शास्त्र को श्रीमद् राजचंद्रजी ने बहुमान से 'वनशास्त्र' कहा है। वन में विचरनेवाले दिगंबर संत ने सिद्ध भगवान के साथ बातें करते-करते और अंतर में सिद्ध जैसे स्वरूप का अनुभव करते-करते इस शास्त्र की रचना की है। उसका यह छठवाँ अधिकार है।

* अध्यात्म की दृष्टिपूर्वक जिसने आत्मा को राग से भिन्न जाना है, उसे फिर श्रावक की भूमिका में कैसा राग होता है और कैसा राग छूट जाता है, उसका यह कथन है। शुभराग हो, वह कहीं मोक्ष का कारण है, ऐसा धर्मी श्रावक नहीं मानते।

* अधिकार के प्रारंभ में मंगलाचरणरूप में भगवान ऋषभदेव और श्रेयांसकुमार का स्मरण

किया है। इस भरतक्षेत्र में असंख्य वर्षों बाद भगवान ऋषभदेव मुनिधर्म के आद्य-प्रणेता हुए; और मुनिदशा में उन्हें आहारदान देकर श्रेयांसकुमार दानधर्म के प्रणेता हुए।

* मतिज्ञान-जातिस्मरण ज्ञान में ऐसी कोई अचिंत्य शक्ति है कि किसी जीव के शरीरादि बदल गये हों, तथापि उसे देखकर निःशंक निर्णय कर लेता है कि यही जीव पूर्व भव में हमारा संबंधी था। श्रेयांसकुमार ने ऋषभ मुनिराज को देखा और ज्ञान की निर्मलता में जातिस्मरण हुआ और ऐसा जाना कि अरे, यह तो आठवें भव में वज्रजंघ राजा थे और उन्हीं के साथ मैंने (श्रीमती ने) मुनिराज को आहारदान दिया था। आत्मा अरूपी है, देह बदल गया है, तथापि मतिज्ञान की शक्ति उसे जान लेती है—असंख्य वर्ष पहले यही आत्मा मेरे साथ था—ऐसा निःशंक केवलज्ञान समान जान लेता है। मतिज्ञान में जब इतनी शक्ति है, तो केवलज्ञान की शक्ति की क्या बात!

* ऐसे केवलज्ञानी अरिहंत परमात्मा को जो पहिचाने, उसे तो चैतन्यस्वभावी आत्मा का निर्णय हो जाता है और मोह का नाश होकर समयग्दर्शन प्रगट होता है। भगवंतों ने मोह के नाश का ऐसा उपदेश दिया है—उसका अलौकिक वर्णन प्रवचनसार गाथा 80-82 में है।

* यहाँ श्रेयांसकुमार देनेवाले और ऋषभ मुनि उत्तम पात्र, वे दोनों चरमशरीरी, उसी भव में मोक्ष जानेवाले हैं; परंतु वे कहीं दान के शुभराग के कारण नहीं है, परंतु उस समय रागरहित चैतन्य आत्मा की अंतर में प्रतीति है, वही मोक्ष का कारण है। श्रेयांसकुमार ने वैशाख शुक्ला तृतिया के दिन ऋषभदेव भगवान को इक्षुरस का आहारदान देकर पारणा कराया था। भरतक्षेत्र में असंख्यात वर्षों के बाद आहारदान का यह प्रसंग बना, तब देवों ने आकाश में मंगलवाद्य बजाकर 'अहो दानं... अहो दानं...' ऐसी घोषणा करके महोत्सव किया था। वैशाख शुक्ला द्वितीया की रात्रि में श्रेयांस राजा को स्वप्न आया कि मेरे आँगन में आज कल्पवृक्ष आया है! कल्पवृक्ष जैसे मुनिराज आँगन में पधारे हैं... उन्हें देखते ही श्रेयांसकुमार को जातिस्मरण हुआ। पूर्व के आठवें भव में मुनियों को आहारदान दिया था, उसकी विधि का स्मरण हुआ और विधिपूर्वक ऋषभमुनि को आहारदान दिया। इसप्रकार दानतीर्थ का प्रवर्तन हुआ। मुनियों को आहारदान आदि देने के शुभभाव धर्मी श्रावकों को आते हैं। ऋषभ भगवान ने दिव्यध्वनि द्वारा भरतक्षेत्र में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया और श्रेयांसकुमार ने दानतीर्थ का प्रवर्तन किया।

* शास्त्र एक ओर रागरहित आत्मा का स्वभाव बतलाते हैं तथा दूसरी ओर श्रावक की भूमिका में मुनि को आहारदान आदि शुभभाव हों, उनकी प्रशंसा भी करते हैं। भूमिकानुसार जो बात जैसी हो, उसे उसीप्रकार समझना चाहिये। श्रावक को रागरहित आत्मा की दृष्टिरूप सम्यक्त्व भी वर्तता है और साथ-साथ शुभराग भी वर्तता है; उस राग के कारण पूजा-भक्ति-दान-स्वाध्याय आदि भाव आते हैं और अशुभ से बचने के लिये शुभ को कर्तव्य भी कहा जाता है, लेकिन उस राग की सीमा पुण्यबन्ध जितनी है, वह कहीं मोक्ष का साधन नहीं है—ऐसी धर्मी को प्रतीति है।

* मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह वीतरागभाव है; ऐसा मोक्षमार्ग जिसने जाना है, अंशतः प्रगट किया है, उसकी यह बात है। जो सम्यग्दर्शनादि निश्चयमोक्षमार्ग है, वह तो वीतरागभाव है और उसका फल मोक्ष है। शुभरागादि जो व्यवहारमोक्षमार्ग है—उसका फल क्या है ?—उसका फल तो स्वर्गादि संसार है-उसे वास्तव में मोक्षमार्ग कैसे कहा जाये ? मोक्षमार्ग तो एक है, दो नहीं। वीतरागभावरूप एक ही मोक्षमार्ग है। वीतरागभाव, वह एक मोक्षमार्ग और शुभराग, वह दूसरा मोक्षमार्ग—इसप्रकार दो मोक्षमार्ग नहीं। वीतरागभाव, वह मोक्षमार्ग है और राग, वह मोक्षमार्ग नहीं है—इसप्रकार एक ही मोक्षमार्ग है।

* यह ज्ञायकभावरूप आत्मतत्त्व है, इसे परद्रव्य के भावों से भिन्न देखने पर शुद्धरूप दिखायी देता है और उसे देखनेवाली पर्याय भी शुद्ध होती है... इसलिये कषायचक्र मिट जाता है, ज्ञान उससे पृथक् हो जाता है। पर्याय में कषायचक्र से ज्ञान पृथक् हुए बिना 'चैतन्यतत्त्व शुद्ध है'—ऐसी पहिचान नहीं हो सकती। इसप्रकार शुद्धद्रव्य को देखने से पर्याय भी शुद्ध हुई वर्तती है।

* कषायचक्र का मिटना कठिन है, लेकिन अशक्य नहीं; क्योंकि शुद्ध द्रव्यस्वभाव के सन्मुख होने से कषायचक्र मिट जाता है। ज्ञान का स्वरूप स्वभाव से ही सर्व परभावों से रहित है, इसलिये ज्ञानस्वभाव का अनुभव होते ही सर्व परभावों का ध्वंस हो जाता है। ज्ञानस्वभाव तो रागादि परभाव रहित है, उसकी स्वसन्मुख परिणति भी रागरहित हुई, वहाँ उसने राग को छोड़ा—ऐसा कहा जाता है। ऐसा देखा जाये तो ज्ञान में परमार्थ से

कहीं रागादि का कर्तृत्व नहीं है कि ज्ञान उसे छोड़े। ज्ञान तो स्वभाव से ही रागरहित है, ज्ञान में राग का प्रवेश नहीं है। ज्ञान, ज्ञानरूप हुआ, वह तो विकार से पृथक् का पृथक् है।

* जिसका ज्ञान अंतरस्वभावसन्मुख नहीं हुआ और कषायचक्र में (पुण्य-पाप में) एकाकार अज्ञानरूप से वर्तता है, उसे यह कहने का अधिकार नहीं है कि 'मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ;' क्योंकि शुद्धतत्त्व ज्ञान का ज्ञेय हुआ ही नहीं है। जाने बिना श्रद्धा किसकी? जिसका ज्ञान कषायचक्र से पृथक् होकर एक ज्ञायकभाव को लक्षगत करके शुद्धरूप परिणमित हुआ है अर्थात् जिसने ज्ञायकभाव की उपासना की है, उसे ही 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसा अनुभव और ज्ञान-श्रद्धा सच्चे हैं। उसने अंतर्मुख होकर शुद्ध आत्मा को स्वज्ञेय बनाया है। समयसार, गाथा 17-18में भी इसप्रकार जीव-राजा को साधने की रीति बतलायी है।

* अहा, समयसार में तो चैतन्यानुभव के गंभीर भाव भरे हुए हैं; इसकी एक ही गाथा का भाव बराबर समझने से सम्यग्ज्ञान और आत्म-अनुभव हो जाता है। यह तो विज्ञानघन आनंदमय आत्मा को देखने के लिये अद्वितीय जगत्चक्षु है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इस समयसार की रचना करके भरतक्षेत्र के जीवों पर तीर्थंकर जैसा उपकार किया है और अमृतचंद्रस्वामी ने उसके भावों को खोलकर गणधरदेव जैसा उपकार किया है। उन्होंने तो शुद्धात्मा के अनुभवरूप निजवैभव का नमूना दिया है.... निहाल कर दिया है।

* अहो, रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग। उसमें जो जीव प्रवर्तन करते हैं, वे अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं। मोक्षमार्ग अर्थात् आत्मा की शुद्धता, वह द्रव्य में एकाग्रता अनुसार होती है। आत्मद्रव्य क्या है, उसकी जिसे श्रद्धा हो, उसी को उसमें एकाग्रता द्वारा शुद्धता होती है और व्यवहार-आचरण उस शुद्धतानुसार होता है—ऐसा मेल है। शुद्धतारहित मात्र व्यवहार-आचरण के शुभराग को कहीं श्रावक के व्रत नहीं कहे जाते, वे तो अज्ञानी के बालव्रत हैं। शुद्धतामय व्यवहार-आचरण को ही व्रत कहा जाता है। वह व्रताचरण अंदर की उसप्रकार की शुद्धता को प्रसिद्ध करता है कि इस जीव को इतने राग के अभावरूप शुद्धता हुई है। (प्रवचनसार में चरणानुयोग के प्रारंभ में यह बात कही है।)

* सम्यग्दृष्टि को भूमिकानुसार अशुभपरिणाम के समय भी अंतर में रागरहित शुद्ध परिणति वर्त रही है। बाह्य में नारकीकृत दु:ख के समय भी उसे चैतन्यपरिणति की शांति का

वेदन होता है, वह परिणति तो आनंदरस का पान करती है, तथा बाह्य में इंद्रपद का वैभव-विलास होने पर भी धर्मी की चेतनापरिणति तो उससे पृथक् ही वर्तती है। राग और ज्ञान चेतना एक ही काल में वर्तने पर भी दोनों का कार्य भिन्न-भिन्न है, दोनों की जाति भिन्न-भिन्न है, उनकी भिन्नता को जो पहचानते हैं, उन्हें सम्यक्वी की सच्ची पहिचान होती है, और भेदज्ञान होता है।

* अहो, भगवान आदिनाथ ने जिस धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया, उस तीर्थरूप मोक्षमार्ग को जो नहीं साधते और अन्य कुमार्ग में प्रवर्तन करते हैं, वे दीर्घकाल तक संसार में भ्रमण करते हैं। निर्मोही-सम्यग्दृष्टि तो मोक्षमार्ग में हैं; इसलिये प्रशंसनीय हैं, परंतु मोहवान मिथ्यादृष्टि जीव पंच महाव्रत पालता हो, तथापि वह मोक्षमार्ग में नहीं है; इसलिये वह प्रशंसनीय नहीं है। सम्यग्दर्शन के बिना कभी मोक्षमार्ग नहीं होता।

* मोक्षमार्गरूप रत्नत्रधर्म है, वह मुनियों को सर्वदेश होता है और गृही-श्रावकों को एकदेश होता है। चैतन्य के आनंद में झूलनेवाले जैन मुनि निर्ग्रंथ दिगम्बर होते हैं और उनके अंतर में रत्नत्रयधर्म वर्तता है; तीन कषाय का अभाव होता है। अव्रती सम्यग्दृष्टि को व्रतादि न होने पर भी इंद्र उसकी प्रशंसा करता है कि—वाह! चैतन्यदृष्टि धारक धर्मात्मा! तुम मोक्षमार्ग में हो। मुनि तो मोक्षमार्ग में हैं, तुम भी मोक्ष के मार्ग में हो, तुम्हारा अवतार धन्य है... तुम्हारा आत्मा कृतकृत्य है—ऐसा कहकर कुन्दकुन्दस्वामी ने भी अष्टपाहुड़ में सम्यग्दृष्टि श्रावक की प्रशंसा की है।

  सम्यग्दर्शनसहित अव्रती श्रावक जब इतना प्रशंसनीय है, तब रत्नत्रयसहित मुनिवरों की महिमा का क्या कहना! वे तो पंचपरमेष्ठी भगवान की पंक्ति में विराजमान हैं।

* शुद्ध आत्मा को यहाँ 'ज्ञायकभाव' कहकर वर्णन किया है। एकबार एकांत में ज्ञायकभाव का विचार करते-करते गुरुदेव ने शास्त्र के कई वाक्य नोट किये थे, वे सब बोल ज्ञायकभावरूप शुद्ध आत्मा के वाचक हैं। वे निम्न प्रकार हैं:—

1. निज कारणपरमात्मा	2. शुद्ध आत्मा	3. कारणशुद्धजीव
4. चैतन्यचमत्कार मात्र	5. कारणसमयसार	6. शुद्धद्रव्य
7. परम पारिणामिकभाव	8. भगवान ज्ञानस्वभाव	9. परमभाव

10. भगवान ज्ञाता द्रव्य	11. परमतत्त्व	12. चित्शक्तिमात्र भाव
13. जीवतत्त्व	14. पंचमभाव	15. आत्मतत्त्व
16. सहज ज्ञानशरीर	17. शुद्धभाव	18. निजद्रव्य
19. ज्ञायकभाव	20. शुद्धतत्त्व	21. स्वद्रव्य
22. निर्विकल्पतत्त्व	23. अन्तः तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व	24. अभेदतत्त्व
25. स्वभावभाव	26. नित्य तत्त्व	27. कारणआत्मा
28. ध्रुवतत्त्व	29. सामान्य	30. शुद्धज्ञानचेतना
31. आनंदधाम	32. निजपद	33. उपयोग

— ऐसे अन्य अनेक विशेषणों द्वारा संतों ने शुद्धआत्मा बतलाया है।

* 'ज्ञायक' कहने से उसमें कहाँ परज्ञेय की उपाधि नहीं है; परज्ञेय के कारण इसे ज्ञायकपना है—ऐसा नहीं है। स्वयं अपने स्वरूप से ही ज्ञायक है। परज्ञेय को जानने से कहीं उसे अशुद्धता नहीं है, क्योंकि स्वयं तो ज्ञायकरूप रहकर ही जानता है। पर को जाने और अपने स्वरूप को ही प्रकाशे, उस समय भी उसे स्वयं ज्ञायकपना है। इसप्रकार आत्मा स्वभाव से ही ज्ञायकभावरूप प्रकाशित होता है। ज्ञान राग को जाने, तथापि ज्ञान रागरूप नहीं हो जाता।

* ज्ञायकतत्त्व राग से पार परम सूक्ष्म तत्त्व है, तथापि वह ऐसा नहीं कि जानने में न आये। राग के अवलंबन बिना स्वयं अपने स्वरूप को स्पष्ट-प्रत्यक्ष अनुभव में ले, ऐसा आत्मा का सामर्थ्य है। अनंत संत भेदज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करके मोक्ष गये हैं।

* ज्ञायक आत्मा जब अंतर्मुख होकर स्वयं अपने स्वरूप को ही स्वसंवेदनरूप से प्रकाशित करता है, तब स्वयं ज्ञाता और स्वयं ज्ञेय;—इसप्रकार ज्ञातारूप कर्ता और ज्ञेयरूप कर्म—इन दोनों की एकता है, ज्ञायक स्वयं अपने को प्रकाशित करता है, वहाँ बीच में राग की अपेक्षा नहीं है। राग को जानते समय कहीं राग के कारण ज्ञायकपना नहीं था, ज्ञायक स्वयं अपने से ही ज्ञायक है। जिसप्रकार स्व को प्रकाशित करते समय रागरहित स्वयं अपने से ही ज्ञायक है, उसीप्रकार रागादि परज्ञेयों को प्रकाशित करते समय भी स्वयं राग से भिन्न ज्ञायकभावरूप ही प्रकाशमान होता है। रागकृत अशुद्धता कहीं ज्ञान में

नहीं है। राग स्वयं अशुद्ध है लेकिन राग को जाननेवाला ज्ञान कहीं अशुद्ध नहीं है, वह तो ज्ञान के स्व-पर-प्रकाशक सामर्थ्य से ही प्रकाशमान होता है।

* अहो, ऐसा भिन्न का भिन्न ज्ञायकतत्त्व शुद्ध है, उसे लक्ष में तो लो। स्वयं ज्ञाता, स्वयं ज्ञान, स्वयं ज्ञेय; ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयरूप एक ज्ञानमात्र शुद्धभाव मैं हूँ—ऐसा धर्मी अनुभव करते हैं। ज्ञान के कल्लोलरूप परिणमित होने पर भी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय तीन भेदरूप धर्मी अपने को नहीं अनुभवता। मैं स्वयं ज्ञान, मेरा स्वतत्त्व ही मेरा ज्ञेय, मैं स्वयं जाननेवाला ज्ञाता;—ऐसे ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान की एकतारूप मेरी चैतन्यलीला है। द्रव्य से-क्षेत्र से-काल से या भाव से खंड-भेद किये बिना सुविशुद्ध एक चैतन्यमात्ररूप मैं स्वयं को अनुभव करता हूँ। उसमें अन्य की अपेक्षा नहीं है। अहो, ऐसे चैतन्य का निर्णय भी राग की अपेक्षा से पार है। ऐसा निर्णय और अनुभव करनेवाले जीव को आत्मा में अतीन्द्रिय आनंदसहित मोक्ष की भनक आ जाती है—ऐसी दशा का नाम मोक्ष है।

* धर्म अर्थात् आत्मा के आनंद का स्वभाव। धर्मी का ज्ञान स्वसत्ता का अवलंबन करता हुआ मोक्ष को साधता है, परसत्ता के अवलंबन को वे मोक्ष का साधन नहीं मानते। परसत्ता के अवलंबन से हुआ कोई भी भाव मोक्ष का साधन नहीं होता। धर्मी को भूमिकानुसार परावलंबन होता है, लेकिन उसे वह मोक्ष का कारण नहीं मानता। उस समय जितना स्वालंबी वीतरागभाव है, उतना ही मोक्ष का कारण है। परावलंबी किसी भी भाव को उपादेय या मोक्ष का कारण माने, वह मिथ्यादृष्टि है।

* वाह! यह तो फतेपुर के आँगन में चैतन्यरस वर्ष रहा है। वीतरागी संतों ने पंचमकाल में चैतन्यरस की वर्षा की हे, जिसे समझने से चैतन्य की 'फतह' होती है और आनंद का 'पूर' आता है—ऐसी यह बात है।

* अरे जीव! तूने तो आत्मज्ञान नहीं किया और अन्य आत्मज्ञानी जीवों की सेवा किसप्रकार करना चाहिये—वह भी तुझे नहीं आया, इसलिये तुझे पूर्वकाल में शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं हुई।

* ज्ञानी ने कैसे आत्मा का अनुभव किया है—उसे लक्ष में लेकर तू भी वैसा अनुभव कर, तभी ज्ञानी की सच्ची उपासना होगी और शुद्धात्मा की भी उपासना होगी।

* कोई मात्र भक्ति के शुभराग से ऐसा माने कि मैं ज्ञानी की सेवा करता हूँ—तो उसे सच्ची सेवा नहीं कहते; क्योंकि ज्ञानी कैसे हैं, उन्हें तो तू पहचानता नहीं है; तो तूने सेवा किसकी की ?

* यदि ज्ञानी को पहिचाने तो राग से भिन्न आत्मा लक्ष में आ ही जाता है। मात्र राग द्वारा ज्ञानी की सच्ची सेवा नहीं होती। जैसा ज्ञानी का भाव है, वैसा ज्ञानभाव (स+एव) अपने में प्रगट करना, वह ज्ञानी की सच्ची सेवा है।

* शुद्धद्रव्य की दृष्टि में पर्याय 'गौण' है। पर्याय का कहीं अभाव नहीं है। शुद्ध-अशुद्ध भाव हैं, वे भी आत्मा की पर्याय के धर्म हैं; परंतु आत्मा को शुद्धस्वभाव की दृष्टि से देखा जाये, तब रागादि अशुद्धता से भिन्न एकरूप चैतन्यभाव दिखाई देता है, पर्याय के भेद उसमें दृष्टिगोचर नहीं होते।

* अहा, ऐसे आत्मा को साधना, वह तो प्रभु का मार्ग है। वीतराग भगवंतों द्वारा साधा हुआ यह मार्ग है! 'हरि का मारग है शूरों का...' आत्मा के ज्ञान द्वारा मोहादि को हरे, वह हरि है। ऐसे हरि का मार्ग तो शूरवीरों का मार्ग है, वह कहीं राग द्वारा नहीं साधा जा सकता।

* अनंत गुणों के स्वाद से भरपूर एक ज्ञायकभाव का अनुभव करनेवाला जीव उस ज्ञायक एकस्वभाव की दृष्टि में मैं ज्ञान हूँ, मैं दर्शनर हूँ, मैं चारित्र हूँ—ऐसे भेद-विकल्प नहीं करता; एक आत्मा में तीन भेदों के विकल्प, वह ज्ञानी का कार्य नहीं है। धर्मी अपने को गुणभेद के विकल्प से पार ज्ञायकतत्त्वरूप अनुभव करता है, उस अनुभव में चैतन्य के अनंत गुणों का स्वाद है।

* अभेद समझने के लिये भेद किये, परंतु लक्ष तो अभेद का ही था। भेद के विकल्प में रुकने से आत्मा का सच्चा स्वरूप अनुभव में नहीं आता। धर्मी शिष्य गुण-भेद के विकल्प से भी पृथक् होकर एक शुद्ध ज्ञायकभावरूप अपने को देखता है।—ऐसा स्वरूप देखनेवाला जीव ही सच्चा पंडित है; उसकी अभेददृष्टि में गुण-भेद का कर्तृत्व नहीं है, इसलिये भेद का अभाव कहा है।

* भेद को देखने से विकल्प उठते हैं, और विकल्प का कर्तृत्व अज्ञान में है, इसलिये ज्ञानी को उसका अभाव कहा है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की निर्मल परिणति तो धर्मी को है,

उसका कहीं अभाव नहीं। अभेद आत्मा की अनुभूति में पर्यायभेद अथवा गुणभेद गौण हो जाते हैं, भेद का लक्ष नहीं रहता।

* एक अभेदतत्त्व की अनुभूति में सर्व धर्म समा जाते हैं। इसप्रकार अनंत धर्मोंवाले एक धर्मीरूप से ज्ञानी अपना अनुभव करता है। जिसमें अपने अनंत धर्म अथवा निर्मल गुण-पर्यायों का समावेश है, ऐसा एक धर्मी, उसे यहाँ ज्ञायकभाव कहा है।

* ऐसे ज्ञायकभाव को जो शिष्य अभी समझा नहीं है, परंतु समझने का जिज्ञासु होकर 'निकटवर्ती' हुआ है, अंतर में अपने स्वभाव के निकट आया है, वह बाह्य में श्रीगुरु के निकट आया है;—ऐसे भाव और द्रव्य दोनों प्रकार से शिष्य निकटवर्ती हुआ है। ऐसे शिष्य को अभेदतत्त्व समझाते समय बीच में भेद का विकल्प आ जाता है, परंतु भार तो अभेदतत्त्व की ओर है। तद्नुसार शिष्य भी समझ जाता है कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद कहे, वे मात्र व्यवहार से हैं; परमार्थ एक तत्त्व के अनुभव में वे भेद विकल्प नहीं हैं।

* भेद के विकल्प का अवलंबन कहीं अंतर के अनुभव का साधन नहीं होता। विकल्प को लांघकर सीधे अभेद के अवलंबन द्वारा निर्विकल्प आनंदसहित आत्मा अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव करने पर सम्यग्दर्शन होता है और वह मोक्ष का कर्णधार है।

* भाई, इस सम्यग्दर्शनरूपी कर्णधार (नाविक) रहित तेरी नौका को मोक्ष में कौन ले जायेगा? सम्यग्दर्शनरहित तेरी नौका संसार-समुद्र में डगमगाती रहेगी। इसलिये ज्ञानियों ने जैसा आत्मा कहा है, वैसे आत्मा को प्रथम लक्ष में लेकर सम्यग्दर्शन कर... वह सम्यग्दर्शन तेरी नाव को भव-समुद्र से पार लगा देगा।

* राग के एक विकल्प को मोक्ष का कारण माने, यह कोई छोटी भूल नहीं है, यह तो मोक्षमार्ग की बड़ी चोरी है। जैसे राजा के अंत:पुर में प्रवेश करके चोरी करे, वह राजा का बड़ा चोर है; उसीप्रकार सर्वज्ञदेव के वीतरागमार्गरूपी दरबार का अनादर करके जो जीव राग से धर्म मानता है, वह चैतन्यदरबार का चोर है। और उस मिथ्यात्वरूप चोरी का फल अनंत संसार का दु:ख है। उसके विपरीत चैतन्यतत्त्व को राग से भिन्न अनुभव में लेने पर जो सम्यग्दर्शन होता है, वह महा मोक्षसुख का दाता है।

* ऐसा सम्यग्दर्शन लाखों-करोड़ों जीवों में से किसी विरले को होता है। ऐसा विरल होने

पर भी जीव सम्यग्दर्शन प्रगट कर-करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। वह सम्यग्दर्शन कैसे हो? सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा कैसा अनुभव में आता है—उसका यह वर्णन है।

* चैतन्य के अमृत का यह स्रोत हे। चैतन्यसमुद्र के उमड़ने से यह रत्न निकले हैं। इन्हें भाग्यवान जीव प्राप्त करते हैं।

* एक आत्मा में अनंत धर्म हैं, वे सब भिन्न-भिन्न स्वादवाले-भिन्न-भिन्न लक्षणवाले हैं। अभेद एक आत्मा की अनुभूति में समस्त धर्मों का स्वाद किंचित् एकमेक अनुभव में आता है। अभेद आत्मा की अनुभूति में आत्मा के समस्त धर्म समा जाते हैं, यहाँ कोई भेद नहीं रहते कि—'यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह आनंद है'—इसलिये ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद ज्ञानी को नहीं हैं। सम्यग्दर्शन में ऐसे आत्मा की अनुभूति है।

* अहा, जहाँ आत्मा की ऐसी अनुभूति हुई कि ज्ञान सर्व विकल्पों से भिन्न होकर परिणमित हुआ, वहाँ बारह अंग का ज्ञान हो या न हो—ऐसा कोई नियम नहीं है कि सम्यग्दृष्टि को बारह अंग का ज्ञान होता ही है। पूर्ण ज्ञान का पिण्ड स्वयं ही है, वह जहाँ अनुभव में आ गया, वहाँ शास्त्रज्ञान के विकल्प तो एक ओर रह गये।

* मात्र शास्त्राभ्यास करते-करते अनुभूति हो जाये-ऐसा नहीं है। शास्त्रों में संतों ने जो स्वभाव कहा है, उस स्वभाव के सन्मुख होकर जिसने अनुभव किया, वह जीव इस संसार-समुद्र से पार हो गया, अंतर में उसकी भगवान से भेंट हो गई और सच्ची आत्मविद्या उसे आ गयी।

* अहा, ऐसे अनुभव की क्या बात! अनुभव की ऐसी बात का श्रवण मिल जाना भी महान भाग्य है। अरे जीव! संत तुझे भगवान कहकर बुलाते हैं। तेरा स्वरूप भगवान अर्थात् महिमावान है—कि जिसके सन्मुख होने से अनंतगुण का समुद्र आनंद की हिलोरें लेता है।

* ऐसे आनंद की अनुभूति में श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र आदि किसी भेद के विकल्प नहीं हैं। ज्ञानी अपने ज्ञानभाव में विकल्प को नहीं आने देते, इसलिये विकल्प के साथ उन्हें कर्ता-कर्मपना नहीं है। भाई, अपने उपयोग की दिशा को एकबार ऐसे स्वभाव की ओर बदल दे।

* 'चाँपा' विकार का दृश्य नहीं देख सका और दृष्टि फेर ली; उसकी माँ भी जलकर मर गई। इस दृष्टांत से यहाँ चैतन्यरूप चाँपा विकार के ओर की दृष्टि फिराकर अपने स्वभाव की ओर उन्मुख होता है। परंतु ऐसी वीतरागदशारूपी चाँपे रागादि विकार में उत्पन्न होते, वे तो चैतन्यस्वभाव के सेवन से ही जन्म धारण करते हैं। 'चाँपे' जहाँ-तहाँ जन्म नहीं लेते, वे तो अपनी कुलवती माता के उदर से ही अवतार लेते हैं। तीर्थंकर तो अपनी माता की कोख से जन्म धारण करते हैं; ऐसी माताएँ घर-घर में नहीं होती; उसीप्रकार पुण्य में और भेद के विकल्प में कहीं चैतन्यदशा के चाँपे जन्म धारण नहीं करते, वे तो चिदानंद एकरूप स्वभाव के सेवन से ही उत्पन्न होते हैं। अभेद आत्मस्वभाव में दृष्टि करे और सम्यक्त्वरूप आनंदपुत्र का अवतार न हो, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी दृष्टि के बिना शुभराग के दूसरे लाख-करोड़-अनंत उपाय करे, तथापि सम्यग्दर्शन नहीं होता।

* सम्यग्दृष्टि-गृहस्थ-श्रावक अंतर में आत्मा की उपासना द्वारा आनंद का स्वाद लेते हैं; परंतु उस भूमिका में अभी राग शेष है, इसलिये व्यवहार में देव-गुरु की पूजा-उपासना-दान-स्वाध्याय आदि होते हैं; परंतु उसमें जो राग है, उसे धर्मी अपने चैतन्यभाव में जरा भी नहीं आने देता; राग और चैतन्यभाव को भिन्न-भिन्न रखता है।

* नववें ग्रैवेयक तक के भोग जिससे प्राप्त हों, ऐसा पुण्य जीव ने अनंत बार किये हैं, लेकिन राग के वेदन में ही स्थिर रहा; इसलिये बहिरात्मा ही रहा, जिससे वह किंचित् सुख को प्राप्त नहीं हुआ। मंद राग भी सुख नहीं, रागमात्र दु:ख ही है। सुख, राग से भिन्न चैतन्य की शांति में है। चैतन्य के अनुभव के बिना सुख कभी प्रगट नहीं होता।

* अहा, सम्यग्दृष्टि को 'ईषत् सिद्ध'—छोटे सिद्ध कहा है। मुनि तो पंचपरमेष्ठी में मिल गये—उनके महिमा की क्या बात! लेकिन सम्यग्दृष्टि-अव्रती को 'ईषत् सिद्ध' (नो सिद्ध) कहकर भगवंतों की जाति में लिया है। अमृतचंद्राचार्य ने तत्त्वार्थसार में यह बात कही है (श्लोक 234) नो सिद्ध अर्थात् ईषत् सिद्ध अर्थात् छोटे सिद्ध। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर जीव अल्पकाल में सिद्धपद को प्राप्त करता है।

* वैशाख शुक्ला दोज के प्रात:काल, दोज और पूनम के बीच बैठे हुए श्री गुरुदेव ने अत्यंत धीर-गंभीर स्वर में मांगलिक सुनाते हुए कहा कि—(समयसार की प्रथम गाथा)—इस

अपूर्व मंगल द्वारा सिद्ध भगवंतों को नमस्कार किया है। अनंत सिद्ध भगवंतों को लक्ष में लेकर उनका सन्मान-बहुमान करने से आत्मा में स्थापित करके नमस्कार करने से राग से भिन्न होकर अपने शुद्ध आत्मा के ऊपर लक्ष जाता है, इसलिये स्व-सन्मुखता होकर भेदज्ञानरूपी दोज उगती है और फिर उसमें एकाग्रता द्वारा केवलज्ञान की पूर्णिमा उदित होती है। इसप्रकार दोज उदित होकर आत्मा पूर्णता को प्राप्त हो वह अपूर्व मंगल है।

* जो भेदज्ञान है, वह आस्रवों से निवृत्त है, अर्थात् क्या?—क्या वहाँ राग होता ही नहीं?—ऐसा नहीं है, रागादि होते हैं लेकिन ज्ञान उनसे भिन्न ही भिन्न रहता है। ज्ञान ज्ञानरूप रहता है और आत्मा के किसी भी अंश को अपने में नहीं आने देता। इसलिये वह ज्ञान आस्रव से भिन्न ही है।

* ज्ञान कभी रागादिभाव में अपनेरूप से नहीं वर्तता और रागादि में जो अपनेरूप से वर्तता है, उसे ज्ञान नहीं कहा जाता।

* राग का एक अंश भी जिसे प्रिय है, उसे ज्ञान का प्रेम नहीं है और उसका ज्ञान राग से भिन्न नहीं है। राग और ज्ञान के बीच की भिन्नता को जो जानता है, वह ज्ञान सदा ज्ञानरूप वर्तता है, वह कभी राग से तन्मय नहीं होता।

* संसार में संसरणरूप जो क्रिया है, वह क्रिया परमधर्म के फल में प्राप्त नहीं होती; अतः 'परमधर्म' निष्फल है और अज्ञानी की अज्ञान-क्रिया सफल है, क्योंकि उसके फल में संसार-परिभ्रमण होता है। (प्रवचनसार गाथा 116)

* आत्मज्ञान वीतरागी है, उसके फल में मोक्षसुख और परम आनंद प्रगट होता है, उस अपेक्षा से वह सफल है और अज्ञानी की शुभ क्रियायें कभी मोक्षफल नहीं देतीं, अतः वे निष्फल हैं।

* राग की रुचिवाले को ज्ञान का वीतरागी स्वाद नहीं आता। जैसे भौंरा फूल की सुगंध लेने गया, लेकिन नाक में दुर्गंध की गोली रखकर गया, तो उसे फूल की सुगंध कहाँ से आयेगी? उसीप्रकार जीव धर्म करना चाहता है, सुखी होना चाहता है, अपने अंतर में वह सुख भरा है, परंतु अंतर में राग और पुण्य की रुचि रखकर उसका स्वाद नहीं आ सकता। एक बार ज्ञान में से समस्त राग की रुचि निकाल दे, ज्ञान से राग को सर्वथा भिन्न कर दे, तभी ज्ञान के अतीन्द्रिय सुख का स्वाद तुझे आयेगा।

* राग से भिन्न चैतन्य के स्वाद रहित जीव नववें ग्रैवेयक में हो या निगोद में हो—वे सब जीव राग का ही स्वाद ले रहे हैं। राग से भिन्न चैतन्य तत्त्व को जो नहीं जानते, उन्हें राग रहित सुख का स्वाद कहाँ से आयेगा?

* पुण्य करके अज्ञानी जीव वैमानिक देव हो, तथापि कहीं वह सुखी नहीं हो जाता; सम्यग्दर्शन के बिना वहाँ भी दु:खी ही है। छहढाला में कहा है कि—

जो विमान वासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय;
तहँतैं चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै॥

सम्यग्दर्शन के बिना कभी भव-भ्रमण का अंत नहीं आता।

* सम्यग्दर्शन क्या है? और वह किसप्रकार हो? उसका अचूक मंत्र समयसार की 11 वीं गाथा में आचार्यदेव ने बतलाया है। [अहो! इस गाथ के प्रवचन द्वारा गुरुदेव सम्यक्त्व का जो स्वरूप बतला रहे हैं, उसे समझकर अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त किया जा सकता है। अभी तो धर्म का काल है और धर्मप्राप्ति का अवसर है।]

* अरे! चैतन्यतत्त्व के भूतार्थस्वभाव में अचेतनता कैसी? उसमें राग का विकल्प कैसा? चैतन्यतत्त्व के पास राग का काम कराना—वह तो उसे मार डालने के समान है। भाई, चैतन्यस्वभाव में रागादिभाव हैं ही कहाँ, कि वह राग का कर्ता हो? ऐसे स्वभाव की अनुभूति-श्रद्धा-ज्ञान, वह सम्यग्दर्शन है।

* शुद्धनय को आत्मा कहा है, क्योंकि शुद्धनय की परिणति राग से पृथक् होकर अंतर के भूतार्थ स्वभाव में एक में अभेद हो गई है। धर्मी को द्रव्य-पर्याय दोनों का सच्चा ज्ञान है, लेकिन पर्याय के भेद का आश्रय उसे नहीं।

* अहा, ऐसे आत्मा के लक्षरहित जीवन निरर्थक है। जैनशासन का समावेश ऐसे आत्मा के अनुभव में है।

कोई कहे—पर्याय में अशुद्धता है न?

तो कहते हैं कि—भाई, अशुद्धता है, उसकी तो खबर है परंतु उसी समय अशुद्धता से पार जो चैतन्यस्वभाव सत्यरूप से विद्यमान है, उस स्वभाव के सन्मुख होकर देख तो

तुझे आत्मा शुद्ध दिखाई देगा; वहाँ पर्याय में भी मात्र अशुद्धता नहीं रहेगी; भूतार्थ का अनुभव करनेवाली पर्याय भी राग से भिन्न होकर शुद्ध होगी—अर्थात् सम्यग्दर्शन होगा। सम्यग्दर्शन के साथ महा आनंद प्रगट होता है और आत्मा में मोक्ष की मुहर लग जाती है।

* हे गुरुदेव! हमें जिनमार्ग में लेने के लिये और हमें सम्यक्त्व प्रदान करने के लिये ही आपका अवतार विदेह से यहाँ हुआ है... आपके जन्म को हम अपने सम्यक्त्व का जन्म मानते हैं। इसलिये यह जन्मोत्सव मनाते हुए आत्मा सच्चे आनंद से उल्लसित होता है।

* आपके प्रताप से अनेक जीवों के अंतर में धर्म की परिणति जागृत हुई है और बाह्य में भी धर्म-प्रभावना के एक से एक उच्च प्रसंग बनते रहते हैं। इसप्रकार आपके द्वारा अंतर और बाह्य दोनों प्रकार से सदा वृद्धिंगत हो रही तीर्थभावना जब अपनी उत्कृष्ट पराकाष्ठा पर पहुँचेगी, तब हम आपको तीर्थंकर परमात्मा के रूप में देखेंगे... और साथ में देखेंगे गणधरादि समस्त वैभव को! उस काल आपका आत्मवैभव और आपका धर्मपरिवार अद्भुत होगा!

* जिनके प्रताप से जिनेन्द्र भगवान के पंचकल्याणक मनाने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ और जिनकी 83वीं जन्म-जयंती का मंगल-उत्सव आनंदपूर्वक अपूर्वभाव से मनाया, उन मंगलकारी गुरुदेव के चैतन्य-उद्यान में से चुने हुए 82 पुष्पों की यह मंगलमाला आत्मधर्म के पाठकों को धर्मप्रेम सहित समर्पण करता हूँ। बंधुओं, इस पुष्पमाला की सुगंध तुम्हारे चैतन्यरस को पुष्ट करेगी और उसके भावों के मंथन से तुम्हें भेदज्ञान होगा... और तब तुम्हारे अंतर से आनंद के अपूर्व भावसहित देव-गुरु के प्रति श्रद्धांजलि प्रगट होगी। ऐसे भाव से गुरुदेव के प्रति इस मंगलमाला द्वारा हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ।

(ब्रह्मचारी हरिलाल जैन)

'हमारे आनंद की दोज उगी है'

[फतेपुर में वैशाख शुक्ला दोज का प्रवचन]

इस 72 वीं गाथा में आत्मा को भगवान कहा है। ज्ञानस्वरूपी आत्मा वह भगवान है, और रागादिभाव उससे भिन्न हैं।—ऐसे भेदज्ञान द्वारा आत्मा आस्रवों से छूटता है अर्थात् ज्ञान द्वारा आस्रव रुकते हैं। ऐसा ज्ञान वह मंगल है।

ऐसा भेदज्ञान होने पर अंतर में से अतीन्द्रिय आनंद का अंश आता है और अखंड ज्ञानसमुद्र स्वयं आनंद की तरंगोंरूप उल्लसित होता है। आनंद के झूले में झूलनेवाले संत कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस समयसार में कहते हैं कि हे भाई! चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा अत्यंत पवित्र है, और रागादि पुण्य-पापभाव तो अशुद्ध-अपवित्र हैं।—इसप्रकार दोनों की भिन्नता पहिचानते ही ज्ञान अपने आत्मस्वभाव में अभेद होकर परिणमन करता है और राग को छोड़ देता है अर्थात् ज्ञान द्वारा ही संसार से मुक्ति और मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसे ज्ञानरूपी जो दोज उगी, वह अतीन्द्रिय आनंद सहित उदित हुई है, वह मंगल है।

गुरुदेव दस-बारह हजार मुमुक्षुओं की विशाल सभा को चैतन्यरस के आनंद में झुला रहे हैं। नीचे उज्ज्वल-धवल दोज और ऊपर चैतन्यतेज से दैदीप्यमान पूर्णिता के बीच विराजमान गुरुदेव सती के उदाहरण से धर्मात्मा की धर्मपरिणति का वर्णन करते हुए भावभीने कंठ से गाते हैं कि—

लगनी बांधी मारा आतमदेवनी साथ... रे...
....हवे संसारना प्रेम हूँ नही करूँ....
नहीं करूँ रे... नहीं करूँ... हूँ रागना प्रेम हवे नहीं करूँ।
लगनी लागी मारा चैतन्यप्रभुनी साथ...
हवे पुण्यना प्रेम हूँ नहीं करूँ रे...

अपने चैतन्य के एकत्व में सुशोभित आत्मा दूसरे से प्रेम क्यों करेगा? एकत्व में शोभायमान आत्मा पर को स्पर्श नहीं करता। पर से पृथक् ऐसे एकत्व में स्थित आत्मा को

सम्यग्दर्शन सहित आनंद की दोज प्रगट होती है, वह महामंगल है।

पाँच पांडव मुनि भगवंत शत्रुंजय पर्वत पर ध्यान में खड़े हैं और अग्नि का उपसर्ग होता है। उस समय युधिष्ठिर-भीम-अर्जुन, यह तीन पांडव तो निर्विकल्प ध्यान द्वारा आनंद में मग्न होकर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं परंतु शेष दो मुनिवरों को विकल्प आया कि अरे, हमारे भ्राता युधिष्ठिर आदि का क्या हुआ होगा! इसप्रकार अपने साधर्मी मुनि बंधुओं के प्रति शुभविकल्प उठने से उन्हें एक भव धारण करना पड़ा और केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। शुभविकल्प भी संसार का कारण है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। विकल्प से भिन्न हुआ ज्ञान ही मोक्ष का कारण है।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका स्वाद तो आनंदरूप है, उसमें दु:ख नहीं है, परंतु राग के वेदन में दु:ख है। वह दु:ख का ही कारण है..... आत्मा स्वयं सुखस्वरूप और जिसके सेवन से सदा सुख ही हो—ऐसा सुख कारणरूप है, वह भगवान है, जिसके सेवन से राग की उत्पत्ति न हो तथा जिसके सेवन से अतीन्द्रियसुख हो। ऐसे आत्मा की रुचि-प्रीति करके उसकी बात का श्रवण करना भी मंगल है। अनंत सर्वज्ञ परमात्मा और दिगंबर संतों ने जो मार्ग कहा है, वह परम सत्य मार्ग है और वही मार्ग यहाँ कहने में आया है। राग से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा की सेवा करना ही सुख का मार्ग है, वही सर्वज्ञ और दिगंबर-संतों का मार्ग है। राग के सेवन से कभी सुख का वेदन नहीं होता, उसमें तो दु:ख है। राग स्वयं अपने को नहीं जानता; राग को जाननेवाला तू स्वयं राग से भिन्न ज्ञानस्वरूप है।

अरे जीव! ऐसा भेदज्ञान एकबार तो कर। ज्ञान की दोज उगायेगा तो पूर्णिमा अवश्य होगी। भेदज्ञान होने से अनादि का अंधकार दूर हुआ और आनंद की दोज उदित हुई। ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ, वह मंगल है और वह आनंद की दोज बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा हो जायेगी।

* * *

आत्मा आनंदस्वभाव है, उसे भूलकर मेरा स्वभाव और राग दोनों एक हैं—ऐसा अज्ञानी अनुभव करता है, वह आस्रव का और दु:ख का कारण है। जहाँ ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि करता है, वहाँ पुण्य-पाप से उसका ज्ञान भिन्न होता है, वह भेदज्ञान है और उसमें अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है।

आत्मा का जो चैतन्यरस है, वह राग में नहीं है; इसलिये राग को आत्मा का स्वभाव न कहकर जड़स्वभावी कहा है, उसमें जानने की शक्ति नहीं है। ऐसी भिन्नता होने पर भी, ज्ञान और राग की एकता का अनुभव, वह संसार का कारण है और दोनों की भिन्नता का अनुभव मोक्ष का कारण है। अरे, ऐसे मनुष्यभव में यदि अपने चैतन्यतत्त्व को पहिचानकर जीवन सार्थक नहीं किया तो मनुष्य-जन्म पाने से क्या लाभ ? भाई, अपने सत्य तत्त्व को तू रुचि में ले... तो तेरे भव का अंत आ जायेगा।

ज्ञान और राग के बीच महान अंतर है। दोनों में मेल नहीं परंतु विपरीतता है। ज्ञान तो निराकुल आनंद से भरपूर है, राग का उसमें समावेश नहीं होता—इसप्रकार दोनों में अत्यंत भिन्नता है। एक दुख, एक सुख; एक ज्ञानमय और दूसरा ज्ञान से विपरीत; एक शुचिरूप, दूसरा अशुचिरूप;—ऐसी अत्यंत भिन्नता है। ऐसी भिन्नता को जो नहीं जानते, वे अनाथ हैं, अपने चैतन्यनाथ की उन्हें खबर नहीं है। अहा, चैतन्यतत्त्व अनंत निजवैभव का नाथ है, पर के एक अंग को भी वह अपने में एकमेक नहीं करता। सम्यक्त्व होने पर अपने आनंद के नाथ की प्राप्ति होती है। जब तक आनंद के नाथ की प्राप्ति न हो, तब तक जीव अनाथ है। चैतन्य की प्रतीति होने पर आत्मा अनाथ मिटकर सनाथ हो जाता है। अहा, चैतन्यतत्त्व की ऐसी सुंदर बात !—जिसे समझने पर संसार से मुक्ति हो और परम आनंद प्रगट हो—उसका प्रेम किसे नहीं आयेगा ? बंध से मुक्ति का उत्साह किसे न हो ? भाई, यह तो मुक्ति का अवसर है, संत राग से भिन्न तेरा स्वरूप बतलाकर तुझे मोक्ष का उपाय समझाते हैं, उसे तू उल्लासपूर्वक ग्रहण कर। ऐसे आत्मस्वरूप के ग्रहण से अंतर में मो आनंद की किरण प्रगट हुई है, वह क्रमशः वृद्धिंगत होकर केवलज्ञानरूप पूर्णिमा होगी.... वह महा मंगल है।

'आत्मधर्म की आजीवन सदस्य योजना'

आत्मधर्म मासिक-पत्र के हजारों की संख्या में ग्राहक हैं। आत्मधर्म अधिक से अधिक विकसित हो और उसके ग्राहकों को प्रतिवर्ष वार्षिक शुल्क भेजने का कष्ट न हो तथा संस्था को भी व्यवस्था में सुविधा रहे, इस हेतु 101) रुपये की '**आजीवन सदस्य**' योजना चालू की गई है। इस योजना के अंतर्गत सदस्यों को आजीवन बिना वार्षिक चंदा के आत्मधर्म भेजा जायेगा। जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहते हों वे निम्न पते पर 101) रुपया भेजकर इस योजना में सम्मिलित हो जायें। यह योजना गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये है। ड्राफ्ट, बैंक ऑफ इंडिया, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का भेजें।

पत्र-व्यवहार का पता
श्री मैनेजर, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र-जिला भावनगर)

23. श्री टाया एंड संस C/o. श्री सुखलालजी टाया, उदयपुर (राज.)
24. श्री एम.सी. तुरखिया, लजपतराय रोड, बम्बई-56
25. श्री तरुणकुमार सुमतिचंदसा C/o. रूपचंदसा दीपासा, खंडवा (म.प्र.)
26. श्री गुलाबचंदजी कैलाशचंदजी मामा, इंदौर (म.प्र.)
27. श्री सुमेरकुमार जैन एंड कंपनी, राजा बाजार, फुलेरा (राज.)
28. श्री पूरणसागरजी महाराज, दमोह (म.प्र.)
29. श्री सुंदरलालजी रमेशकुमारजी, भोपाल (म.प्र.)
30. श्री कुमुदेशचंद्र जैन, रेशमगली, जनरलगंज, कानपुर (उ.प्र.)
31. श्री अलोकचंदजी जैन 'बंधु', अशोकनगर (म.प्र.)
32. श्री पूनमचंद कटारिया, इंदौर
33. श्री दिगम्बर जैन समाज C/o. श्री जुहारमलजी सूरजमलजी, नीमच (म.प्र.)
34. श्री कमलश्री प्रसन्नकुमारजी रावत, शिवपुरी (म.प्र.)
35. श्री नेमीचंद्रजी सरावगी, गौहाटी (आसाम)

36. श्री शिखरचंदजी अजमेरा, गौहाटी (आसाम)
37. श्री सौ. सज्जनदेवी बंडी, प्रतापसदन, इंदौर (म.प्र.)
38. श्री बीरमादेवी धर्मपत्नी श्री कैलासचंदजी जैन C/o. जैना वॉच कं. सात बत्ती दरियागंज, दिल्ली-6
39. श्री माणकबाई पाटनी, उज्जैन (म.प्र.)
40. श्री हीरालालजी पाटौदी, लोहारदा (जिला देवास, म.प्र.)
41. श्री रत्नप्रभादेवी शेठी, विनोदभवन, उज्जैन (म.प्र.)
42. श्री बसंतकुमार जैन (ओवरसियर) P.W.D. जतारा, (म.प्र.)
43. श्री होंसीलालजी बंसीलालजी जैन सर्राफ, मलकापुर (महा.)
44. श्री प्रकाशचंद्र शीलचंद्र जैन, दिल्ली
45. श्री दिगम्बर जैन मंदिर-पंचायत, वैद्यवाड़ा-मालीवाडा, दिल्ली-6
46. श्री पवनकुमार जैन, दिल्ली
47. श्री पृथ्वीचंद रामकुमार जैन, दिल्ली
48. श्री मानकचंदजी जैन, दिल्ली-6
49. श्री रतनलालजी श्रीपाल जैन, कटरा अशर्फी चाँदनी चौक, दिल्ली
50. श्री हेमचंदजी जैन, दिल्ली
51. श्री भीमसैनजी जैन सर्राफ, चाँदनी चौक, दिल्ली
52. श्री लाला नरेशचंदजी जैन, दिल्ली
53. श्री विमलप्रसाद जैन, 1299, वैद्यवाड़ा, दिली
54. श्री लाला सूरजमल सुमेरचंद जैन, दिल्ली
55. श्री सोहनलालजी प्रेमनारायण जैन, दिल्ली
56. श्री त्रिलोकचंदजी जैन, दिल्ली
57. श्री प्रेमचंदजी C/o. श्री नन्हेंमल जैन, 4171, पहाड़ी धीरज, दिल्ली-6
58. श्री सुबोध जैन मातेश्वरी, श्री नरेन्द्रकुमर जैन, दिल्ली-5
59. श्री दिगम्बर जैन खंडेवालवाल पंचायत वैद्यवाडा, दिल्ली-6

60. श्री नन्नुमलजी जैन जौहरी, दिल्ली

61. श्री धन्नादेवी धर्मपत्नी श्री कैलाशचंदजी वजीरपुर, दिल्ली-7

62. श्री बलवंत पद्मचंदजी कपड़ेवाले, कटरा नागपुर, दिल्ली-3

63. श्री सेठ नानगमल एंड कंपनी, दिल्ली-6

64. श्री हिस्वंदजी कंजीलालजी जैन, गांधीगंज, छिंदवाड़ा (म.प्र.)

65. श्री गणपात सनाया मीरते, सक्कर वासहत-बंगलो नं. 27, कोल्हापुर (महा.)

66. श्री राजमलजी काशलीवाल, व्यावर (राज.)

67. श्री धनकुंवर बहिन धर्मपत्नी श्री पूनमचंदजी रहावत C/o. श्री जैन एंड कंपनी, कल्यानपुर (राज.)

68. श्री रमेशचंद नरेशचंद सोगानी, कलकत्ता

69. श्री दीपचंदजी सेठिया, सरदारशहर (राज.)

70. श्री खेडमलजी गणपतलालजी विजयवर्गीय, ग्वालियर (म.प्र.)

71. श्री बच्छराजजी सरावगी, B 6 पृथ्वीराजमार्ग जयपुर (राज.)

72. श्री सुनीलकुमार मांगीलाल जैन, इंदौर (म.प्र.)

73. श्री चत्रभुज पन्नालाल जैन, पोस्ट बाबई (जिला हुसंगाबाद)

74. श्री सिं० धन्यकुमार जैन, खडेरी (दमोह-म.प्र.)

75. श्री डॉ. धरमचंदजी, देवेन्द्रकुमारजी, इंदुकुमारजी, खंडवा (म.प्र.)

76. श्री विजयकुमार पाटौदी, छिंदवाडा (म.प्र.)

77. श्रीमती गेंदाबाई धर्मपत्नी श्री भूरालाल जैन, गुना (म.प्र.)

78. श्री विजयकुमारजी टोंग्या जैन, विजय स्टेट-राजाधिराज मार्ग, मथुरा (उ.प्र.)

79. श्री दिगम्बर जैन मंदिर, सेक्टर नं. 6, भिलाई (जिला-दुर्ग-म.प्र.)

80. श्री कल्याणकुमारजी जैन, सदर बाजार, दिल्ली-6

फतेपुर (गुजरात) में

अपूर्व धर्म-प्रभावना

समवसरण में सीमंधरस्वामी की प्रतिष्ठा, जिनमंदिर का जीर्णोद्धार, स्वाध्यायभवन का उद्घाटन, पूज्य स्वामीजी की 83वीं जन्म-जयंती और वीतरागी तत्त्वज्ञान की प्रभावना के मंगल-उत्सवों के कारण छोटे से फतेपुर गाँव में 15 दिन तक धार्मिक वातावरण छाया रहा। उन मंगल-उत्सवों की झाँकी आप इन समाचारों में देखेंगे। (—सं.)

जिनके महान प्रताप से ऐसे मंगल-उत्सव प्राप्त होते हैं, वे पूज्य स्वामीजी वैशाख कृष्णा 4 के प्रात:काल फतेपुर में पधारे... उस समय भगवान के कल्याणक से शोभायमान किसी नगरी में प्रवेश कर रहे हों—ऐसा प्रतीत होता था। नवनिर्मित शीतलनाथ नगरी और सीमंधरनाथ नगरी—इन दोनों के पास से गुजरते हुए जहाँ फतेपुर में प्रवेश किया, वहाँ प्रवेश द्वार पर दो हाथी खड़े थे तथा वीतरागविज्ञान नगर के प्रतिष्ठा-मंडप में पधारते हुए जिनेन्द्रभगवान की रथयात्रा सामने से आती मिली।—ऐसे मंगल शकुनपूर्वक फतेपुर में प्रवेश किया।

फतेपुर में दूर-दूर से आये हुए पाँच हजार मुमुक्षुओं ने पूज्य स्वामीजी का स्वागत किया। मंगल-गीत और स्वागत-प्रवचन के बाद, मंगलाचरण में गुरुदेव ने आनंदधाम आत्मा के स्मरणपूर्वक कहा कि आत्मा असंख्यप्रदेशी पवित्र आनंदधाम है, वह स्वयं मंगल है। ऐसे आत्मा का अनादि से विस्मरण था, और पुण्य-पाप को अही अपना स्वरूप मानने के कारण उसका स्मरण था; अब पुण्य-पाप से पृथक् चैतन्यस्वरूप आत्मा की प्रतीति या स्मरण करना - वह मंगल है। आत्मा का सच्चा स्मरण कब करेगा ? जब उसका अनुभव किया हो ! पुण्य-पाप से पृथक् और आत्मा के सन्मुख होकर उसके अवग्रह-ईहा-निर्णय और धारणा जिसने किये हों, वह उसका सच्चा स्मरण कर सकता है। आत्मा का ऐसा ज्ञान जिसने किया, वह विचक्षण

है, वह जानता है कि मैं सदा एक पर से भिन्न अपने चैतन्यरस से भरपूर हूँ; कर्म या मोहादि भाव मेरे नहीं हैं।—आत्मा की ऐसी प्रतीति हुई, वह अपूर्व मंगल है।

आत्म-प्रतीति होने पर आनंद के अंश का अनुभव होता है, वह बिन्दु है, और संपूर्ण आत्मा आनंदस्वरूप है, वह सिंधु है। बिंदु भी मैं और सिंधु भी मैं; आनंदमय निर्मल पर्यायरूप बिंदु भी मैं हूँ और त्रिकाल आनंद का सिंधु भी मैं हूँ। इसप्रकार द्रव्य-पर्याय दोनों से शुद्ध आनंदरूप मेरा आत्मा ही मंगल है। मेरा प्रभुत्व मुझमें है, पर्याय में वह प्रगट करके मैं ही पूर्ण परमात्मा होनेवाला हूँ।—ऐसे चैतन्य शुद्धस्वभाव में पर की ओर के भाव की गंध भी नहीं है। मेरा चैतन्यस्वभाव अपने अतीन्द्रिय आनंद की रचना करनेवाला है, वह राग की रचना करनेवाला नहीं है। राग की रचना को जो अपना कार्य मानते हैं, उन्हें चैतन्य की खबर नहीं है। अंतरस्वभावोन्मुख होकर आनंद की और अनंतगुण की निर्मलता की रचना करे, वह स्ववीर्य मंगलरूप है। भाई, एकबार इस दुनिया के वाद-विवाद को छोड़कर आत्मा का अनुभव कर, उसका अवसर है।—इसप्रकार मंगलाचरण किया। (इस मंगलाचरण के अवसर पर कुदरती प्रकाश से 'वीतराग विज्ञाननगर' का प्रतिष्ठा-मंडप जगमगा उठा था। सुंदर भावपूर्ण मंगलाचरण सुनकर हजारों श्रोतागण प्रसन्न हुए थे।)

मंगलाचरण के पश्चात् वीतराग विज्ञान-अध्यात्म शिक्षण-शिविर का उद्घाटन जयपुर के सेठ श्री पूरणचंद्रजी गोदीका ने किया था। फतेपुर में यह शिक्षण-शिविर सात दिन तक चला। गुजराती-हिन्दी-मराठी-कन्नड़ आदि भाषाभाषी एक हजार से अधिक शिक्षार्थियों ने शिक्षण-शिविर में भाग लिया। तम्बु में या वृक्षों के नीचे, चारों ओर धार्मिक-शिक्षण की कक्षाएँ लगती थी; वह दृश्य बहुत ही सुंदर था। 'आजकल का युवा वर्ग धर्म में रुचि नहीं रखता'—ऐसा कहनेवालों ने यदि इस धार्मिक-शिक्षणशिविर के दृश्य देखे होते तो उन्हें ऐसा कहना पड़ता कि वाह! ऐसे अध्यात्म तत्त्वज्ञान में और धार्मिक-उत्सव में आज के बालक, युवक और बहिनें किस उत्साह से भाग ले रही हैं! प्रातःकाल से रात्रि तक धार्मिक विधि और ज्ञानचर्चा ही चलती थी। विद्वानों तथा प्रवनकारों के प्रवचन होते थे। वीतरागमार्ग के तत्त्वज्ञान का ऐसा महान प्रचार और उसमें उत्साह से रस ले रहे भारत के जिज्ञासुओं का ऐसा सुंदर सम्मेलन देखकर प्रसन्नता होती थी। सात दिन के बाद धर्मप्रचार की उत्तम भावनाओं के साथ शिक्षण-शिविर की पूर्णाहुति हुई।

पहले दिन शिक्षण-शिविर के साथ-साथ, बालविभाग की अहमदाबाद शाखा के बालकों द्वारा तैयार अध्यात्म-प्रदर्शन का उद्घाटन बम्बई के सेठ श्री जुगराजजी ने किया था। बालकों को प्रोत्साहन दिया जाये तो वे कितना सुंदर प्रदर्शन कर सकते हैं और हजारों जीवों में कैसा धर्म-प्रचार कर सकते हैं, यह तो प्रदर्शन देखने से समझ में आता था। बालकों ने अपने हाथों की कारीगरी से सुंदर मानस्तंभ, काँच का जिनमंदिर, कुन्दकुन्दस्वामी आदि के दृश्य बनाये थे। बालकों में तत्त्वज्ञान की रुचि जागृत हो, ऐसी अनेक रचनायें थीं। बालबंधुओं! धार्मिक शोभा के कार्यों में तुम अधिक से अधिक रुचि लो, वह जैनशासन के लिये एक गौरव की बात है।

अब उत्सव का वर्णन करने से पूर्व जहाँ यह उत्सव मनाया जा रहा है, उस फतेपुर नगर का अवलोकन पहले कर लें। फतेपुर एक छोटा-सा डेढ़ हजार की आबादी का गाँव है। जहाँ जैनों के सिर्फ 40 घर हैं, जहाँ रेलवे स्टेशन नहीं है, तार आफिस नहीं है, बस की सुविधा भी बहुत मुश्किल से प्राप्त होती है।—ऐसे छोटे गाँव में विशाल उत्सव मनाया गया, वह फतेपुर जैन समाज तथा गुजरात के मुमुक्षुओं का उल्लास, एकता और प्रसिद्ध विद्वान भाई श्री बाबूभाई के परिश्रम का फल है। गुरुदेव का महान प्रभाव सौराष्ट्र के अतिरिक्त आज गुजरात में अधिक फैल रहा है। फतेपुर का जिनमंदिर छोटा था, उसका जीर्णोद्धार करके सुंदर मंदिर तैयार हुआ है। पास में विशाल स्वाध्याय-मंदिर है।—जिनमंदिर के ऊपरवाले भाग में पाँच फुट ऊँची शांतिनाथ भगवान की सुंदर प्रतिमा विराजमान की गई है। (नीचे शीतलनाथ भगवान मूल नायक के रूप में पूर्ववत् विराजमान हैं।) ऊपर के विशाल मंडप में समवसरण की सुंदर रचना संगमरमर की कारीगरीयुक्त है, जिसमें सीमंधर भगवान जीवंतस्वामी विराजमान हैं। सौराष्ट्र में सोनगढ़ तथा राजकोट के उपरांत गुजरात में यह समवसरण की प्रथम रचना है। पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा-महोत्सव के लिये एक निकटवर्ती खेत में 'वीतराग विज्ञाननगर' बनाया गया था, जिसमें सुसज्जित एवं शोभायमान प्रतिष्ठामंडप था, रात्रि के समय बिजली की जगमगाहट के बीच यह विशेष सुशोभित होता था।

वीतराग विज्ञाननगर के भव्य प्रवेशद्वार में से प्रतिष्ठामंडप में प्रविष्ट होते ही सामने धर्मध्वज देखकर मस्तक झुक जाता था... वाह! स्वामीजी के प्रताप से आज जैनधर्म का ध्वज ऊँचे आकाश में कैसा लहरा रहा है। मंडप के बाहर एक ओर व्यवस्था के कार्यालय जोर-शोर

से काम रहे थे। सामने की ओर पुस्तक-विभाग, बालकों का प्रदर्शन और तीन भावभीनी रचनाएँ थीं। बम्बई के शिल्पी श्री प्रीतमभाई द्वारा तैयार की गई वह चलती-फिरती रचनाएँ देखने के लिये दर्शकों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। पहले चित्र में-श्री कुन्दकुन्दाचार्य आकाशमार्ग से सीमंधर भगवान के समवसरण में जारहे हैं, यह कुन्दकुन्दप्रभु के आकाशगमन का चलता-फिरता दृश्य बहुत आकर्षक था। दूसरे दृश्य में-नेमप्रभु का रथ, राजुल की उत्सुकता और पशुओं का बंधन से छूटने के लिये चीत्कार का चलता-फिरता दृश्य था; तीसरे दृश्य में समाधिमरण के लिये मुनिराज की शूरवीतरा, अन्य मुनियों द्वारा उनकी सेवा वैयावृत्य और आचार्यदेव द्वारा उनमें दृढ़ता-शौर्य उत्पन्न करनेवाला उपदेश। हलन-चलन युक्त मुनिराजों का वह दृश्य तो मुनि-जीवन की ऊर्मि जागृत करता था, मुनि सेवा और साधर्मी वात्सल्य की उच्च प्रेरणा प्रदान करता था। (शूरवीर साधक नाम की गुजराती पुस्तिका में यह चित्र छपा हुआ है, जिसके आधार से यहाँ रचना हुई थी)। इसके अतिरिक्त बालकों का धार्मिक प्रदर्शन बालकों में उच्च संस्कार देने की प्रेरणा प्रदान करता था। रात्रि के समय रंग-बिरंगी कलापूर्ण प्रकाश-रचना भी दूर-दूर तक धर्मोत्सव का प्रकाश फैलाती थी। मंडप में प्रवेश करते ही सामने भव्य कलापूर्ण प्रतिष्ठावेदी अनेक जिनबिम्बों से शोभायमान लगती थी। अहा, पूज्य स्वामीजी के प्रताप से चारों ओर आज हमें जिनेन्द्र-समूह देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

विशाल मंडप में प्रतिदिन प्रातः समयसार में से ज्ञायकभाव का और दोपहर में पद्मनंदिपच्चीसी में से श्रावक के धर्मों का वर्णन होता था। अनुभूति का अद्भुत वर्णन और श्रावक की धर्म-दृढ़ता, देव-गुरु का प्रेम आदि का वर्णन सुनकर मुमुक्षु आनंदविभोर हो जाते थे। पूज्य स्वामीजी प्रवचन में कई बार सत्य जैनधर्म की और दिगम्बर मुनियों की अपार महिमा बतलाते थे, तब श्रोताओं का हृदय हर्ष से प्रफुल्लित हो जाता था और मुनियों के प्रति भक्ति-बहुमान से हृदय गद्गद हो जाता था... वाह! ऐसे मुनि हमें गुरु रूप में मिले और ऐसा सत्य मोक्षमार्ग प्राप्त हुआ।

प्रवचन-सभा में अनेक त्यागी-व्रती, विद्वान, प्रसिद्ध कार्यकर्ता, देश के कोने-कोने से आये मुमुक्षुगण तथा बालक—सब एकसाथ एकचित्त से चैतन्यरस का श्रवणपान करते थे। जैनसमाज का महान गौरव इस विशाल सभा में प्रगट होता था और गुरुदेव जिनमार्ग को अत्यंत महिमापूर्वक समझाते थे। कई विद्वानों के आध्यात्मिक भाषण तथा कवियों की आध्यात्मिक

कवितायें भी होती थीं। इसप्रकार प्रथम छह दिन तक तत्त्वज्ञान की मुख्यतापूर्वक शिक्षण-कार्यक्रम चला तथा सातवें दिन से प्रतिष्ठा-विधि प्रारंभ हुई।

द्वितीय वैशाख कृष्णा 10 वीं के दिन प्रात:काल श्री जिनेन्द्रदेव को तथा प्रतिष्ठा के लिये आये हुए जिनबिम्बों को प्रतिष्ठा-मंडप में विराजमान किया गया। मंडप के द्वार पर ध्वजारोहण तलोद के भाई श्री मंगलदास जीवराज के शुभहस्त से होने के पश्चात् समवसरण मंडल विधान की पूजा का प्रारंभ हुआ। कृष्णा 11 के प्रात:काल नांदीविधान, इंद्रप्रतिष्ठा तथा आचार्य-अनुज्ञा आदि विधियाँ हुईं। 16 इंद्र-इंद्राणियों में से प्रथम सौधर्म इंद्र बनने का सौभाग्य फतेपुर के भाई श्री जसवंतलाल छोटालाल भाईचंद को प्राप्त हुआ था। ईशान इंद्र बनने का सौभाग्य फतेपुर के भाई श्री भाईचंद उगरचंद को प्राप्त हुआ था। नेमिनाथ प्रभु के पंचकल्याणक की विधि में पिता समुद्रविजय और माता शिवादेवी बनने का सौभाग्य फतेपुर निवासी, इस महोत्सव के संचालक श्री बाबूभाई चुन्नीलाल महेता तथा उनकी धर्मपत्नी सौ० ताराबेन को प्राप्त हुआ था। श्री बाबूभाई अच्छे आध्यात्मिक प्रवक्ता हैं और सारा जैन समाज उनसे सुपरिचित है। प्रवचन के बाद भव्य जुलूस के रूप में इंद्र-इंद्राणी आदि-धामधूम से श्री जिनेन्द्र भगवान का पूजन करने आये। दोपहर में समवसरण मंडल-विधान पूजा समाप्त होने पर जिनेन्द्र अभिषेक हुआ। सायंकाल मृत्तिकानयन तथा अंकुरारोपणविधि हुई तथा रात्रि में राजुल के वैराग्य का अभिनय हुआ।

डेढ़ हजार की आबादीवाले छोटे से गाँव में बाहर से सात-आठ हजार यात्री-दर्शक आये हुए थे। उन्हें ठहरने के लिये शीतलनगर और सीमंधरनगर में सैकड़ों तम्बुओं की व्यवस्था की गई थी। लेकिन अधिकांश व्यक्ति दोपहर की तीव्र धूप में भी वृक्षों की खुली शीतल छाया में ही रहना पंसद करते थे। वृक्षों की शीतल छाया में सैकड़ों यात्री आनंद से धर्मचर्चा में मग्न रहते थे—वह दृश्य मुनियों के वन-विहार का स्मरण कराता था.... एक ही साथ छह-सात हजार यात्रियों के भोजन की व्यवस्था भी बहुत सुंदर थी, इन सब यात्रियों का भोजन आधे-घंटे में समाप्त हो जाता। उत्सव के हेतु सुंदर साज-सामान अजमेर तथा आगरा से आया था।

कृष्णा 12 के प्रात:काल प्रवचन के बाद यागमंडल-महापूजा द्वारा इंद्रों ने पंचपरमेष्ठी भगवंतों का पूजन किया। प्रतिदिन प्रात:काल जिनेन्द्र भगवान के सन्मुख हजारों भक्त आनंद से

पूजा-भक्तिभजन-चिंतन-मनन-वांचन करते थे; वह दृश्य जिनशासन की महिमा और साधर्मियों का प्रेम प्रदर्शित करता था। जिनेन्द्रभगवान की और ज्ञानी गुरुओं की मंगल छाया में साधर्मी आनंदपूर्वक एक-दूसरे को मिलते और परस्पर धर्मभावना की पुष्टि करते थे। जिसे देखकर ऐसा लगता था कि वहा! धन्य धर्मकाल!—ऐसे धर्मकाल में चैतन्य की आराधना प्राप्त हुई, वह जीवन की कृतकृत्यता है।

सायंकाल जलयात्रा का जुलूस निकला था। जलयात्रा के 108 कलश, हाथी, सारथी आदि की बोलियाँ बोलने का लोगों में इतना उत्साह था कि कुछ ही समय में सभी बोलियाँ समाप्त हो गईं, और अधिक कलशों की माँग चालू रही। गाँव-गाँव के उत्साही कार्यकर्ता और विद्वान उमंग पूर्वक उत्सग के कार्य में सहयोग दे रहे थे। यात्रियों के आगमन का प्रवाह सतत चल ही रहा था। अंतिम दो दिनों में हजारों यात्रियों का आगमन हुआ। दस हजार यात्रियों के उपरांत आसपास के ग्रामों से लगभग दस हजार स्त्री-पुरुष प्रतिदिन उत्सव देखने आते थे। इसप्रकार डेढ़ हजार की आबादीवाले गाँव में प्रतिष्ठा के दिन तो 50 हजार का विशाल जन-समूह एकत्रित था।

रात्रि को पंचकल्याणक के प्रारंभिक दृश्यों में इंद्रसभा, नेमिनाथ भगवान के गर्भकल्याणक की तैयारी समुद्रविजय महाराज का राजदरबार, देवियों द्वारा शिवामाता को सेवा आदि दृश्य हुए। इंद्रसभा और राजदरबार में बारंबार सुंदर अध्यात्म की चर्चा होती थी—जिसे सुनकर मुमुक्षु समाज आनंद से डोल उठता। पूज्य स्वामीजी ने भी खूब प्रसन्नता व्यक्त की थी। धर्मचर्चा का आलेखन ब्रह्मचारी श्री हरिभाई ने किया था और समुद्रविजय राजा के रूप में भाई श्री बाबूभाई स्वयं होने के कारण वह चर्चा अति सुंदर आनंददायक बन गई थी। शिवादेवी माता तथा सौधर्मेन्द्र आदि भी चर्चा में उत्साह से भाग लेते थे। इस बार के पंचकल्याणक में यह अध्यात्मरसपूर्ण तत्त्वचर्चा एक विशेषता थी।

गर्भ-कल्याणक से पूवे समुद्रविजय महाराजा का प्रथम राजदरबार लगा जिसमें निम्नानुसार चर्चा हुई थी:—

समुद्र महाराजा— अहा, आज का दरबार अद्‌भुत प्रतीत होता है। आज अंतर में ऐसी प्रसन्नता हो रही है, जैसे रत्नत्रयधर्म के अंकुर प्रगट हो रहे हों! आकाश में से कोई कल्पवृक्ष उतरकर जैसे मेरे आँगन में आ रहा हो!

सभाजन— महाराज! आज आपकी बात सुनकर हमें भी हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आज दरबार के अन्य कार्य स्थगित रखकर अपने श्रीमुख से हमें धर्म की चर्चा सुनायें।

महाराजा— वाह, धर्मचर्चा से उत्तम दूसरा क्या हो सकता है? आज सब प्रसन्नता से धर्मचर्चा करो।

सभाजन— महाराज! इस संसार के अनेक विचित्र प्रसंगों में रहते हुए भी ज्ञानी अलिप्त कैसे रह सकता होगा?

महाराजा— किसी भी प्रसंग पर 'मैं ज्ञान हूँ'—ऐसी स्वतत्त्व की बुद्धि धर्मी को वर्तती है, और ज्ञान में अन्य किसी अंश को एकमेक नहीं करता, अतः ज्ञानी का ज्ञान सदैव अलिप्त रहता है।

सभाजन— हे स्वामी! आपका वात्सल्य सुप्रसिद्ध है, तो साधर्मियों का वात्सल्य कैसा होता होगा, वह कहिये।

महाराजा— अहा, जिनके देव एक, गुरु एक, सिद्धांत एक तथा जिनका धर्म एक है—ऐसे साधर्मियों के बीच संसार के कोई भी मतभेद नहीं आते, इसीलिये साधर्मी को देखकर अंतर में प्रसन्नता होती है, उसके साथ धर्मचर्चा, अनेक प्रकार से उसका आदर-सन्मान, वात्सल्य करके धर्म का उत्साह बढ़ाते हैं। साधर्मी के प्रति धर्म का प्रेम उल्लसित हो जाता है। जगत में बड़े हजारों मित्रों का मिलना अति सुलभ है, लेकिन सच्चे साधर्मी का संग मिलना अति दुर्लभ है।

सभाजन— अहा, साधर्मीप्रेम की ऐसी सुंदर बात आपके श्रीमुख से सुनकर हमें बहुत प्रसन्नता होती है।

सभाजन— महाराज! ऐसा सत्य जैनधर्म हमें महाभाग्य से सुनने को मिला है; यहाँ वर्तमान में चौथा काल वर्त रहा है... इससमय इक्कीसवें तीर्थंकर का शासन चल रहा है। दीर्घकाल से इस भरतक्षेत्र में कोई तीर्थंकर नहीं हैं, तो अब 22वें तीर्थंकर का अवतार कब होगा?

महाराज— चारों ओर से जो उत्तम चिह्न प्रगट हो रहे हैं, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अब शीघ्र ही 22 वीं तीर्थंकर का अवतार होगा... इतना ही नहीं, हमारे अंतर में जो धर्मभावना का आंदोलन चल रहा है, उससे ऐसा अनुभव होता है कि तीर्थंकर भगवान हमारे ही आँगन में पधारे हों।

—यह सुनकर सभाजन हर्षित हो उठते हैं।

सभाजन— हे महाराज! आप महा भाग्यशाली हो... आप चरमशरीरी हो... और आपके कुल में चरमशरीरी तीर्थंकर का अवतार होगा... अपनी द्वारका नगरी धन्य होगी।

सभाजन— सिर्फ द्वारकानगरी नहीं, हम सब धन्य होंगे, बाल तीर्थंकर को हम साक्षात् देखेंगे और उनके दर्शन से अनेक जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करके संसार में पार हो जायेंगे।

सभाजन— एक छोटे से बालक को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अवधिज्ञान और अतीन्द्रिय आनंद हो—यह एक आश्चर्य की बात है।

सभाजन— यह आश्चर्य की बात होने पर भी सत्य है। और अल्प समय में जब हम सब बालप्रभु तीर्थंकर को शिवामाता की गोद में खेलते देखेंगे, तब हम सबका यह आश्चर्य मिट जायेगा और आत्मा की अद्भुत अलौकिक शक्ति कैसी है, उसका हमें साक्षात्कार होगा।

सभाजन— महाराज! अनेक जीव मोक्ष गये हैं और अनके जायेंगे—वे सब किसप्रकार जायेंगे?

महाराज— सुनो, जैन सिद्धांत का तीनों काल का नियम है कि—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैव अभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

—भेदज्ञान की भावना ही एक मुक्ति का उपाय है।

सभाजन— ऐसा भेदज्ञान किसप्रकार होता है?

महाराज— तुमने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है। भेदज्ञान के लिये प्रथम आत्मा की लगन लगना चाहिये। लगन ऐसी होना चाहिये कि आत्मकार्य के अतिरिक्त अन्य कोई सांसारिक कार्य सुखरूप भासित न हो। ज्ञानी के निकट चैतन्यतत्त्व का श्रवण करने पर उसकी अपूर्व महिमा आये कि अहा, मेरा तत्त्व ऐसा अचिंत्य-गंभीर है! इसप्रकार अंतरतत्त्व की परम महिमा प्रगट होने पर परिणति संसार से हटकर चैतन्य-सन्मुख होती है और शांति के गंभीर समुद्र का अनुभव करके रागादि से भिन्न हो जाती है। ऐसा भेदज्ञान होने पर जीव के अंतर में मोक्षमार्ग खुल जाता है। अतः भेदज्ञान की भावना निरंतर करना चाहिये।

भावयेत् भेदविज्ञानम् इदं अच्छिन्नधारया,
तावत् यावत् परात् च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते।

सभाजन— देव! ऐसा भेदज्ञान संसार के सर्व जीव क्यों प्राप्त नहीं कर पाते होंगे?

सभाजन— सुनो, मैं कहता हूँ—

बहु लोग ज्ञानगुणे रहित आ पद नहीं पामी शके,
रे! ग्रहण कर तु नियत आ जो कर्म-मोक्षेच्छा तने।

सभाजन— ठीक है, चैतन्यतत्त्व बहुत गंभीर है; लोग उसे प्राप्त कर पायें या नहीं; हमें जगत की चिंता छोड़कर अपना आत्महित हो वह कर लेना चाहिये।

सभाजन— ठीक है, यह जगत तो विचित्र है, जगत को देखने में रुकने से अपना आत्मकल्याण रह जाता है। तीर्थंकर जगत को देखने के लिये नहीं रुके, वे तो अंतर के चैतन्य की साधना करके अपने मार्ग पर चले गये।

सभाजन— अहा, आज भेदज्ञान की सुंदर चर्चा हुई। आज का दिव्य प्रकाश ऐसा लगता है, जैसे किन्हीं तीर्थंकर का अपने नगर में आगमन हो रहा हो!

शिवादेवी— मुझे भी आज की चर्चा में तीर्थंकर की महिमा सुनकर अत्यंत आनंद हुआ है। मेरा अंतर भी किसी अद्भुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है। आकाश में से मानों आनंद-आनंद बरस रहा हो, ऐसा लगता है।

सभाजन— अरे, देखो... देखो! आकाश से रत्नवर्षा हो रही है, दिव्य मंगल-वाद्य बज रहे हैं... अरे! यह तो स्वर्ग से कुबेरजी आ रहे हैं...

कुबेर— (आकर कहते हैं) अहो देव! आप धन्य हैं। हे माता! आप भी धन्य हैं। छह महीने बाद 22वें तीर्थंकर आपकी कोख से अवतार लेंगे। अतः इंद्र महाराजा ने, मुझे आपकी सेवा में भेजा है। हे जगत्पिता! हे जगत्माता! तीर्थंकर परमात्मा जिन के आँगन में अवतार लें, उनकी महिमा का क्या कहना! भगवान के आगमन से आपकी देह तो पवित्र हुई और आपका आत्मा भी सम्यक्त्वादि से सुशोभित हो जायेगा... हम स्वर्ग के देव आपका सन्मान करते हैं तथा दिग्कुमारी देवियाँ भी माताजी की सेवा करने आ रही हैं।

* * *

दिग्कुमारी देवियाँ आकर शिवादेवी माता को मंगल-स्तुति करती हैं—

धन्य धन्य छो हे माता! तुं जिनेश्वरनी माता....

नंदन तारा जयवंत छे त्रणलोकमां,
जे पुत्र तारो थाशे ते मुनि थई विचरशे,
केवल पामी, अे भव्य जीवो ने तारशे।
तारा उरमां रत्न बिराजे नेमतीर्थंकर प्रभु राजे,
मोक्षगामी, तुं माता जयवंत लोकमां,
तारो पुत्र मोटो थाशे, अे परमात्मा बन जाशे,
जेने देखी समकित जीव पामशे।

स्तुति के पश्चात् देवियाँ शिवामाता से कहती हैं—

1. अहो माता! सम्यक्त्वधारक रत्न आपकी कोख में आने से आप भी सम्यक्त्ववन्ती हो गई हैं। आपके अंतर में सम्यक्त्वरत्न विराजमान है, उसे मेरा नमस्कार हो।

2. देवी! अपनी स्त्री पर्याय को जगत निंद्य कहते हैं, परंतु आप तो तीर्थंकर प्रभु की माता बनकर जगत्पूज्य हो गईं!

3. हे माता! इस संसार में लाखों स्त्रियाँ पुत्रों को जन्म देती हैं, लेकिन तीर्थंकर जैसे पुत्र को तो जन्म देनेवाली माता तो इस भरतक्षेत्र में एक आप ही हैं।

4. अहा, यह निंद्य स्त्रीपर्याय भी जिस सम्यक्त्व के प्रताप से पूज्य बनी है, उस सम्यक्त्व के महिमा की क्या बात!

5. हे माता! आपका अंतर अति उज्ज्वल है, पवित्र है, क्योंकि उसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और अवधिज्ञान जैसे रत्न विराजमान हैं।

6. हे माता! तीर्थंकर के आत्मा का स्पर्श करने से आप धन्य बन गईं। जो तीन लोक का नाथ है, वह आपका बालक कहलाया, इसलिये आप जगत की माता बन गईं।

7. हे माता! हम दिन-रात आपकी तथा आपके पुत्र की सेवा करेंगी और आपकी भाँति हम भी सम्यक्त्व प्राप्त करके स्त्रीपर्याय का छेदन करके मुक्त होंगी।

8. माता, आपके श्रीमुख से निकलती हुई वाणी का श्रवण करते हुए हमें ऐसा आनंद आता है, जैसे आपमें विराजमान तीर्थंकर भगवान ही बोल रहे हों। माताजी कहते हैं कि—हे देवियों! तुम्हारी चर्चा से हमें बहुत आनंद हुआ है। अहो! जिनके अंतर में परमात्मा विराजमान हों, उनके आनंद की क्या बात!

इसके बाद माता को 16 मंगल स्वप्न आते हैं। दूसरे दिन (वैशाख कृष्णा 11) प्रातःकाल राजदरबार में सुंदर तत्त्वचर्चा चल रही है, वहाँ महारानी शिवादेवी आकर मंगल-स्वप्नों की बात कहती हैं, महाराजा कहते हैं कि—यह मंगल-स्वप्न यह सूचित करते हैं कि तुम्हारी कोख से तीर्थंकर परमात्मा का जन्म होगा। यह सुनकर सबको प्रसन्नता होती है।

प्रतिष्ठाचार्य पंडित श्री मुन्नालालजी समगोरया (सागरवाले) प्रत्येक प्रसंग का वर्णन भावपूर्वक करते थे और पूज्य स्वामीजी का प्रभाव देखकर बारंबार प्रसन्नता व्यक्त करते थे। प्रवचन के बाद जन्म-कल्याणक संबंधी अनेक बोलियाँ हुईं। बोलियों में लोगों ने बहुत ही उत्साहपूर्वक भाग लिया और एक लाख रुपये से अधिक की बोलियाँ कुछ ही मिनटों में पूरी हो गईं। दोपहर में जिनमंदिर तथा समवसरण मंदिर की वेदीशुद्धि-ध्वजशुद्धि-कलशशुद्धि संपन्न हुई। इस मंगलकार्य में पूज्य बेनश्री-बेन ने उत्साहपूर्वक भाग लिया था। रात्रि में कंकुबाई श्राविकाश्रम कारंजा के छोटे-छोटे बालकों ने अमरकुमार नाटक के अभिनय द्वारा

नमस्कार मंत्र की जो महिमा प्रसिद्ध की, वह बहुत ही सुंदर थी। सत्यनिष्ठ कार्यकर्ताओं के द्वारा यदि बालकों को उच्च संस्कार दिये जायें तो वे कितना सुंदर कार्य कर सकते हैं तथा जीवन में कैसे उच्च संस्कार प्राप्त कर सकते हैं—यह सब अभिनय में प्रदर्शित करता था। बालकों को ऐसे संस्कार प्रदान करनेवाली बहनों को धन्यवाद दिये बिना रहा नहीं जा सकता।

* * *

इधर दिग्कुमारी देवियाँ शिवादेवी माता की सेवा करते हुए उनसे तत्त्वचर्चा कर रही हैं। कितनी आनंददायक होगी वह भगवान की माता के साथ की धर्मचर्चा! चलो पाठक! हम भी उसका कुछ रसास्वादन करें—

एक देवी पूछती है—हे माता! अनुभूतिस्वरूप हुआ आत्मा आपके अंतर में विराजमान है, तो वह अनुभूति कैसे प्रगट होती है? वह समझाइये।

माता उत्तर देती हैं—हे देवी! अनुभूति की महिमा अति गंभीर है। आत्मा स्वयं ज्ञान की अनुभूतिस्वरूप है, उस ज्ञान की अनुभूति में राग की अनुभूति नहीं है;—ऐसा भेदज्ञान हो, तब अपूर्व अनुभूति प्रगट होती है।

दूसरी देवी पूछती है—हे माता! आत्मानुभूति होने पर क्या होता है?

माता कहती हैं—सुनो देवी! अनुभूति होने पर संपूर्ण आत्मा स्वयं अपने में स्थिर हो जाता है; उसमें अनंत गुणों के चैतन्यरस का ऐसा गंभीर वेदन होता है कि उसके महान आनंद को आत्मा ही जानता है। वह वेदन वाणी द्वारा व्यक्त नहीं होता।

तीसरी देवी पूछती है—माताजी! वाणी द्वारा व्यक्त हुए बिना उस वेदन की खबर कैसे पड़ेगी?

माताजी उत्तर देती हैं—हे देवी! स्वयं अपने स्वसंवेदन से आत्मा को उसकी खबर पड़ती है। जैसे यह खम्भा स्पष्ट दिखायी देता है, उसीप्रकार अनुभूति में आत्मा उससे भी अधिक स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

चौथी देवी पूछती है—हे माता! आँख द्वारा खम्भा दिखायी देता है—उसकी अपेक्षा आत्मा के ज्ञान को अधिक स्पष्ट क्यों कहा?

माता उत्तर देती हैं—हे देवी! खम्भे का ज्ञान तो इंद्रियज्ञान है, वह परोक्ष है, और आत्मा को जाननेवाला ज्ञान तो अतीन्द्रिय है एवं प्रत्यक्ष है, इसलिये वह अधिक स्पष्ट है।

पाँचवीं देवी पूछती है—अनुभूति के समय तो मति-श्रुतज्ञान हैं, तथापि उन्हें प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय क्यों कहा?

माता उत्तर देती हैं—क्योंकि अनुभूतिकाल में उपयोग आत्मा में ऐसा लीन हुआ है कि—उसमें इंन्द्रियों का या मन का अवलंबन छूट गया है, इसलिये उस काल प्रत्यक्षपना है। 'अहा, उस काल के निर्विकल्प आनंद का क्या कहना?'

छट्ठी देवी कहती है—हे माता! आपने अनुभूति की अद्भुत बात समझायी। आज तो आपके अंतर से मानो कोई अलौकिक चैतन्यरस झर रहा है!

माता कहती हैं—अरे देवी! यह तो अंतर में विराजमान तीर्थंकर के आत्मा का प्रताप है। भगवान का आगमन हुआ, तब से मेरे आत्मप्रदेशों में अतीन्द्रिय आनंदरस छा गया है।

सातवीं देवी कहती है—हे माता! हमें तो ऐसा लगता है कि पंद्रह मास तक आपकी सेवा करते-करते हमें भी अनुभूति का महान लाभ होगा। आपके पुत्र को देखकर और गोद में लेकर हम धन्य बनेंगीं।

माता कहती हैं—हाँ, देवियो! जगत के जीवों को अनुभूति का मार्ग बतलाने के लिये ही हमारे पुत्र का अवतार है! तुम सब महा भाग्यशाली हो कि तुम्हें तीर्थंकर की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ।

आठवीं देवी पूछती है—हे माता! यहाँ राजमहल में लगातार छह महीने से करोड़ों रत्न बरस रहे हैं, रास्ते में उन रत्नों के ढ़ेर पड़े हैं, फिर भी उन्हें कोई लेता क्यों नहीं?

माताजी कहती हैं—अरे देवी! वे रत्न तो जड़ हैं। हमारा पुत्र जन्म लेकर जगत को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी चैतन्यरत्न प्रदान करेगा... तो उन अलौकिक चैतन्यरत्नों को छोड़कर यह जड़रत्न कौन ले? जगत् के जीव तो मेरे पुत्र से सम्यग्दर्शनादि रत्न ग्रहण करेंगे।

देवियाँ आनंदविभोर होकर कहती हैं—हे रत्नकोखधारिणी माता! आपकी जय हो... आपके पुत्र की जय हो...!!

इसप्रकार आत्मचर्चासहित आनंदपूर्वक दिन बीत रहे थे... और एक दिन—

द्वितीय वैशाख कृष्णा 14 के प्रात:काल इंद्र की सभा में अचानक मंगल चिह्न प्रगट होने पर नेमिनाथ भगवान के जन्म की खबर पड़ी; इंद्रों ने आनंद-मंगल व्यक्त किया। भगवान का जन्म होने से चारों ओर आनंद का कोलाहल छा गया था। सौधर्म इंद्र और शची इंद्राणी भगवान का जन्म-कल्याणक मनाने के लिये ऐरावत हाथी पर आकर द्वारिकानगरी (प्रतिष्ठा-मंडप) की प्रदक्षिणा करने लगे।

इधर द्वारिकानगरी में भी समुद्रविजय महाराज का राजदरबार भरा है और आनंदमय धर्मचर्चा चल रही है।—इतने में अचानक ही तीर्थंकर भगवान के जन्म की मंगल-बधाई आती है और चारों ओर हर्ष छा जाता है।

इंद्र-इंद्राणी ऐरावत हाथी लेकर आ पहुँचे; शची इंद्राणी माताजी के निकट गईं और बाल-तीर्थंकर को ले आयीं... इंद्र को सौंप दिया... बालप्रभु को देखकर इंद्र-इंद्राणी के हर्ष का पार नहीं है... फिर प्रभु की सवारी मेरुपर्वत की ओर चलने लगी। फतेपुर जैसे छोटे धूल भरे गाँव में बाल-तीर्थंकर की इतनी विशाल रथयात्रा—जिसमें हाथी, घोड़े, गाड़ियाँ आदि सम्मिलित हैं—कहाँ समाये? गाँव छोटा और रथयात्रा विशाल!—लेकिन नहीं; आज फतेपुर वह फतेपुर नहीं था, बल्कि महान द्वारिकानगरी बन गया था। हजारों नगरवासियों को आश्चर्यचकित करती हुई वह रथयात्रा मेरु के निकट आ पहुँची। दस हजार से अधिक लोग प्रभु का जन्माभिषेक देखने को आतुर थे। खुले मैदान में तेज धूप में खड़े हुए हजारों लोग मानों शीतलता का अनुभव कर रहे थे, क्योंकि तीर्थंकर प्रभु की छाया में जो खड़े थे!....भगवान की मंगल-छाया में आतप कैसा? जिनकी छाया में संसार का आतप मिट जाता है और चैतन्य की अपूर्व शीतलता मिलती है, वहाँ इस सूर्य की धूप की कौन परवाह करता? सब जन्माभिषेक की उमंग भरी भक्ति में तल्लीन थे। आनंदोल्लासपूर्वक जन्माभिषेक करके इंद्राणी ने स्वर्ग के दैवी आभूषणों से प्रभु का शृंगार किया और नाम रखा—नेमिकुमार।

पश्चात् नेमिकुमार तीर्थंकर की सवारी पुन: द्वारिका आ पहुँची। माता-पिता का महान सन्मान करके इंद्रों ने तांडवनृत्य द्वारा अपना हर्ष व्यक्त किया। अहा, अपने पुत्र की ऐसी अद्भुत महिमा देखकर शिवादेवी माता का हृदय फूला नहीं समाता था। माता के हृदय का

वात्सल्य अपार था! माता को पुत्र के प्रति वात्सल्य तो होता ही है, फिर यह तो तीर्थंकर होनेवाला पुत्र था! माता की ममता अपार थी... वे बार-बार अपने पुत्र को और जगत के नाथ को निहारती थीं। बात-तीर्थंकर के प्रभाव से चारों ओर आनंद-उल्लास-भक्ति एवं जिनमहिमा का वातावरण छा गया था।

दोपहर को नेमिकुंवर के पालना-झूलन दृश्य तो देखते ही बनता था! इंद्राणियाँ और देवियाँ भी बाल-तीर्थंकर का पालना झुलाती थीं। पूज्य बेनश्री-बेन ने भी भक्तिपूर्वक नेमिकुंवर को झुलाया था। शिवादेवी माता अपने लाड़ले पुत्र को प्यार के पालने में झुलाते हुए निम्नोक्त मंगल-गीत गा रही थीं—

(राग - अरिहंत तेरे पिता, जिनवाणी तेरी माता)

तुं शुद्ध छो... तुं बुद्ध... तुं निर्विकल्प उदासी...
नेमिकुंवर! झूले छे चैतन्यपारणे...
तुं स्वानुभूति-प्रकाशी, ने अनंत गुण-विलासी...
वीरा मारा! आपोने सम्यक् ज्ञानने...
तमे छो चैतन्यसाधक निज मोक्षतणा आराधक...
झूलो, झूलो, तमे तो चैतन्यपारणे...
बेटा! झट झट मोटो थाजे ने मुनि थई विचरजे,
देजे, देजे, तुं रत्नत्रयनां दानने...
प्रभु! तारा कहेण छे मोटा, अेना जगमां छे नहि जोटा,
भव्य जीवो स्वीकारे तारा कहेण ने...
तुं जैनशासन अजवाली ने केवलज्ञान प्रगटावी,
भवथी छूटी परम पद ने पामजे....

पालने में झूलते हुए छोटे से भगवान को देखकर आनंद होता था और ऐसा लगता था कि—वाह! भारत की माताएँ इसीप्रकार अपने बालकों को पालने में से ही परमात्मा होने के गीत सुनाकर उनमें धर्म के उच्च संस्कार डालें तो पुनः वह नेमिपुत्र का युग आ जाये!

और उन्हें ऐसी प्रेरणा देने-देने के लिये पालना-झूलन के पश्चात् तुरंत महिला-

सम्मेलन प्रारंभ हुआ, जिसमें हजारों महिलाओं ने भाग लिया। पूज्य बेनश्री-बेन (चम्पाबेन तथा शांताबेन) भी पधारी थीं और भारत की महिलाओं ने उनका सन्मान किया था।

रात्रि को समुद्रविजय महाराजा का राजदरबार लगा था। दरबार में सुंदर तत्त्वचर्चा हो रही थी। इतने में जूनागढ़ के महाराजा उग्रसेन के दूत ने आकर उनकी पुत्री राजुल के साथ नेमकुंवर के विवाह का प्रस्ताव रखा और समुद्रविजय महाराज ने उसे स्वीकार कर लिया। देश-देशांतर से आये हुए राजा नेमिकुंवर को विविध प्रकार की सुंदर भेंटें देते हैं और भावना भाते हैं कि—

'हे महाराजा! जगत को सम्यक् रत्नत्रय की भेंट देनेवाले आपको हम क्या भेंट धरें? जिसप्रकार जगत में सर्वश्रेष्ठ ज्ञायक महाराजा से मिलने के लिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी भेंट देना पड़ती है, उसीप्रकार आप तीर्थंकर महाराजा से मिलकर हम प्रसन्नता से यह भेंट दे रहे हैं और भावना भाते हैं कि आपके समवसरण में हमें सम्यक् रत्नत्रय की उत्तम भेंट प्राप्त हो।

तत्पश्चात् नेमिकुमार की बारात जूनागढ़ की ओर रवाना होती है। नेमिकुमार रथ में विराजमान होते हैं, शिवादेवी माता कुमार को विदा करती हैं और उधर जूनागढ़ में राजुल उत्सुकता से नेमिकुंवर की वाट देख रही हैं.....

वैशाख कृष्णा अमावस के प्रातःकाल दीक्षाकल्याणक का दृश्य दिया गया था।

—: दीक्षाकल्याणक से पूर्व सारथी और नेमिकुँवर का संवाद :—

[नेमिकुंवर की बारात जूनागढ़ पहुँचनेवाली है; राजकुमारी नेमिकुमार के दर्शनों की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही हैं। इतने में अचानक ही सामने घिरे हुए पशुओं का करुण चीत्कार सुनकर नेमिकुमार सारथी से कहते हैं:—]

हे सारथी! रथ को रोको... रोको! पशुओं का यह करुण चीत्कार कैसा? इन निर्दोष पशुओं को यहाँ किसने घेर रखा है? ऐसे मंगल अवसर पर करुणता का यह कोलाहल क्यों मचा है? विवाह के समय वैराग्य का यह दृश्य क्यों उपस्थित हुआ?

सारथी— महाराज! यह सब आपके विवाहोपलक्ष में हो रहा है। बारात के मार्ग में इन निर्दोष पशुओं को श्रीकृष्ण ने घिराया है। आप जैसे करुणामय को देखकर यह

बेचारे पशु छूटने के लिये आक्रंदन कर रहे हैं कि हे प्रभो! हमें छुड़ाओ... छुड़ाओ!

नेमिकुमार— अरे, सारथी! यह सब झूठ है। सचमुच यह पशु मेरे विवाह के लिये नहीं, परंतु मुझे वैराग्य उत्पन्न करने के लिये ही श्रीकृष्ण भैया ने यहाँ घिरवाये हैं। अरे, धरती के एक टुकड़े के लिये ऐसा मायाचार! सारथी! वैराग्य का प्रसंग उपस्थित करके श्रीकृष्ण ने तो मेरे प्रति उपकार ही किया है... उन्होंने मुझे विवाह के बंधन से छुड़ा लिया... चलो, रथ को मोड़ो! अब मैं राजुल के साथ विवाह नहीं करना चाहता, मैं तो मुक्तिसुंदरी का वरण करने गिरनार जाना चाहता हूँ।

सारथी— प्रभो! आप यह क्या कह रहे हैं?

नेमिकुमार— सारथी! मैं सच कहता हूँ, मेरा मन इस संसार से उठ गया है; अब मैं अपनी आत्मसाधना पूर्ण करूँगा। रथ को मोड़ लो! मैं दिगम्बर दीक्षा लेकर मुनि होऊंगा और निर्विकल्प शुद्धोपयोग में लीन होकर मोक्ष प्राप्त करूँगा।

सारथी— प्रभो! इधर जूनागढ़ में राजुलदेवी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं और उधर शौरीपुर (द्वारिका) में माता शिवादेवी अपने पुत्र एवं पुत्रवधू को देखने के लिये आतुर हैं... आप कहते हैं कि मैं विवाह नहीं करना चाहता! तो मैं माताजी को क्या उत्तर दूँगा? राजुलदेवी यह आघात कैसे सहन कर सकेंगी? प्रभो, आप वापिस न जाइये... न जाइये!

नेमिकुमार— अरे सारथी! मेरा निर्णय अडिग है। मेरा जन्म यह सांसारिक भोग-भोगने के लिये नहीं परंतु मोक्ष की साधना के लिये है। अरे, संसार की दशा तो देखो! एक धरती के टुकड़े के लिये भाई के साथ मायाचार करना पड़ता है! ....निर्दोष पशुओं को बंधन में डालना पड़ता है... अरे, यह हिंसा हमें शोभा नहीं देती! सारथी, इन पशुओं को मुक्त कर दो... और रथ को गिरनार की ओर ले चलो! अब हमारा चित्त इस संसार से विरक्त हो गया है... अब हमारा रथ संसार के मार्ग पर नहीं किंतु मोक्षमार्ग पर चलेगा।

मने लाग्यो संसार असार... मने लाग्यो संसार असार।
आरे संसारमां नहिं जाऊँ... नहिं जाऊँ... नहिं जाऊँ रे...
मने लागे ज्ञायकभाव सार... मने लागे चैतन्यपद सार,
आरे ज्ञायक में हुं लीन थाउं... लीन थाउं.... लीन थाउं रे...

सारथी— प्रभो! धन्य है आपका जीवन! आपके वैराग्यपूर्ण जीवन को मैं पहले से जानता हूँ... आप जगत से उदास हैं... आप मात्र पशुओं को नहीं किंतु अपने आत्मा को भी बंधन से मुक्त कर रहे हैं। प्रभो! आप जिस मार्ग को अंगीकार कर रहे हैं, वही सत्यमार्ग है। मैं भी आपके मार्ग आऊँगा... और देवी राजुल भी आपका मार्ग ग्रहण करेंगी... अरे, अंत में श्रीकृष्ण भी आपके मार्ग का अनुसरण करके मुक्ति प्राप्त करेंगे। आपका मार्ग तो अनंत तीर्थंकरों का मार्ग है... इसी मार्ग पर चलने से जगत का कल्याण होगा।

—इसप्रकार नेमिप्रभु द्वारा दीक्षा का दृढ़ निश्चय किये जाने पर वैराग्यमय मंगल-वातावरण छा जाता है और लौकान्तिक देव आकर मंगल-स्तुति सहित प्रभु के वैराग्य का अनुमोदन करते हैं—

(1) प्रभो, आप मुनि होकर, आत्मा के ध्यान से केवलज्ञानी बनेंगे और दिव्यध्वनि के द्वारा मोक्ष का मार्ग खोलेंगे; उसे पाकर जगत के जीव धन्य बनेंगे।

(2) अहा, जगत के विरक्ति ही अनंत तीर्थंकरों का पंथ है, आप भी उसी मार्ग पर जा रहे हैं.... जगत भी उसी मार्ग पर आयेगा।

(3) हे प्रभो! आप जन्म से ही वैरागी हो और आज रत्नत्रयमार्ग में जा रहे हो; वह जगत के लिये कल्याण का कारण है।

(4) हे प्रभो! आपको वीतरागी दिगंबर दशा में देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। आपका आत्मा महान है और मुनिदशा भी महान है।

(5) 'जीव मोह को कर दूर, आत्मस्वरूप सम्यक् प्राप्त कर।
यदि राग-द्वेष परिहरे, तो प्राप्ति हो शुद्धात्म की॥81॥

नेमिप्रभु आज ऐसे उत्कृष्ट सुख के मार्ग पर जा रहे हैं, उसे हमारा अनुमोदन है।

(6) आत्मा का आनंद कहो, ज्ञानचेतना कहो, परम सामायिक कहो, निर्विकल्प अनुभूति कहो, निर्ग्रंथ मार्ग कहो, उस मार्ग पर नेमिप्रभु आज जा रहे हैं। धन्य है प्रभु आपका वैराग्य! हम उसका अनुमोदन करते हैं।

(7) अहा, जगत्पूज्य परमेष्ठीपद धारण करके, चिदानंद-स्वभाव में झूलते-झूलते आप गिरनार के सहस्राम्रवन में केवलज्ञान प्राप्त करेंगे और वहीं से जगत को मोक्ष का संदेश सुनाएँगे।

(8) प्रभो! आप शुद्धोपयोगरूप मुनिदशा को अंगीकार कर रहे हैं। मुनि-मार्ग तो अंतर में समाता है; वह कोई राग का मार्ग नहीं है, वह तो वीतरागता का मार्ग है।—उस मार्ग को हमारी अनुमोदना है।

लौकांतिक देवों की अनुमोदना के बाद इंद्र पालकी लेकर आते हैं। प्रभु की पालकी उठाने का पहला अधिकार इंद्रों का नहीं किंतु मनुष्यों का है। जो प्रभु की मुनिदशा तक साथ दे सके और उनके साथ संयम धारण कर सकें, वह प्रभु की पालकी को पहले उठाता है। इसप्रकार मनुष्य राजा पालकी लेकर प्रथम सात डग चलते हैं, फिर विद्याधर राजा सात डग चलते हैं, और अंत में इंद्र पालकी लेकर दीक्षावन में आते हैं।

सुंदर दीक्षावन में आम्रवृक्ष के नीचे प्रभु के दीक्षाकल्याणक की विधि हुई। उसे देखकर ऐसा लगता था मानो गिरनार के सहस्राम्रवन में ही बैठे हों... दीक्षा के पश्चात् नेमिमुनिराज की पूजा-भक्ति हुई; परंतु उस पूजा-भक्ति के समय प्रभु तो निर्विकल्प ध्यान में एकाग्र होकर सातवें गुणस्थान के निर्विकल्प आनंद का अनुभव कर रहे थे; चौथा मनःपर्यय ज्ञान तथा अनेक लब्धियाँ उन्हें प्रगट हो गई थीं। पूजा-भक्ति में एकाग्र भक्तजनों को पता भी नहीं चला कि नेमिमुनिराज कब-कहाँ विहार कर गये।

दीक्षावन में विशाल सभा में पूज्य स्वामीजी ने वैराग्य-प्रवचन करके मुनिदशा की परम महिमा का वर्णन किया... उस धन्य चारित्रदशा की भावना भायी। दिनभर मुनिभक्ति चलती ही रही। दोपहर को पच्चीस जितने जिनबिम्बों पर अंकन्यास विधि हुई।

दोपहर को सेठश्री भगवानदासजी सागरवालों की अध्यक्षता में मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल का अधिवेशन हुआ। अनेक वक्ताओं ने तत्त्वप्रचार संबंधी विचार व्यक्त किये। मध्यप्रदेश के

महा-मुमुक्षु मंडल द्वारा जगह-जगह अच्छा धार्मिक प्रचार हो रहा है; राजस्थान एवं उत्तरप्रदेश में भी विशेष जागृति आ रही है। इसबार आगरा में विशाल शिक्षण-शिविर चल चल रहा है, जिसमें हजारों जिज्ञासु भाग ले रहे हैं। सायंकाल वीतरागविज्ञान-विद्यापीठ की गुजरात शाखा का उद्घाटन हुआ था। गुजरात में अनेक स्थानों पर वीतरागविज्ञान पाठशालाएँ खुलती जा रही हैं। प्रत्येक ग्राम में बालकों के लिये धार्मिक पाठशाला की अत्यंत आवश्यकता है।

रात्रि को विद्वानों का सम्मेलन था। जैनधर्म की सेवा में तत्पर इतने अधिक विद्वान एक साथ, एक ध्येयपूर्वक हिलमिलकर चर्चा कर रहे थे, वह देखकर आनंद होता था। सामान्यतः जहाँ विद्वान एकत्रित हों, वहाँ वाद-विवाद होता है; यहाँ भारत के कोने-कोने से विद्वान आये थे, परन्तु कहीं वाद-विवाद नहीं था; आनंदपूर्वक वीतराग-गोष्ठी चलती थी। 'आत्मधर्म' द्वारा जो प्रचार हो रहा है, उसकी सब विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी, और अभी उसके अधिक प्रचार की भावना व्यक्त की थी। यहाँ देशभर के हजारों जिज्ञासु पाठकों ने 'आत्मधर्म' और उसके संपादक के प्रति जो प्रेम, आदर एवं वात्सल्य की ऊर्मियाँ व्यक्त कीं, वे आश्चर्य पैदा करती थीं। हजारों तत्त्व-जिज्ञासु अध्यात्मप्रेमी सज्जनों का ऐसा प्रेम वह आत्मधर्म के लिये गौरव की बात है। आत्मधर्म के संपादक भी प्रसन्नचित्त से अपने हजारों साधर्मी पाठकों के प्रति हार्दिक वात्सल्य रखते हैं। आत्मधर्म के प्रति भारत के जिज्ञासु पाठकों का प्रेम देखकर विचार आता था कि—अरे, जिनकी वाणी का कुछ अंश ही जिस आत्मधर्म में आता है, उस आत्मधर्म के प्रति जिज्ञासु पाठकों को इतना प्रेम है तो उन गुरुदेव के प्रति कितना प्रेम होगा! यहाँ एकत्रित हुए भारत के सैकड़ों विद्वानों ने पूज्य स्वामीजी की एक स्वर से प्रशंसा की... कवियों ने अपनी कविताओं में उनका गुणगान किया... कवियों ने पंद्रह दिन में जिन कविताओं का पाठ किया उन्हें इकट्ठा किया जाये तो एक बड़ा संग्रह हो जाये।—वह सब हम आत्मधर्म में नहीं दे सकते उसके लिये हमें विद्वान एवं कविगुण क्षमा करें।

विद्वत्-सम्मेलन के प्रारंभ में आशीर्वाद के रूप में स्वामीजी ने कहा कि— आनंदस्वरूप आत्मा स्वयं है, उसका अनादि से विस्मरण और स्वयं को रागादिरूप मानकर उसका स्मरण—वह अनादि-अविद्या है; उसका फल संसार है। मैं आनंदस्वरूप आत्मा हूँ और रागादि पर हैं—ऐसा भेदज्ञान करके मोक्षमार्ग की साधना करना, वह सच्ची विद्या है। ऐसी वीतरागी विद्या को जो जाने, वह सच्चा विद्वान है, और विद्वानों द्वारा ऐसी विद्या के प्रचार की आवश्यकता है।

पश्चात् श्री पंडित फूलचन्द्रजी सिद्धांतशास्त्री बनारसवालों की अध्यक्षता में ज्ञान-प्रचार की भावना संबंधी कुछ प्रस्ताव रखे गये थे तथा अनेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये थे। वर्तमान काल में जीवन अल्प और शक्ति थोड़ी; उसमें सच्ची विद्या द्वारा आत्महित कर लेना चाहिये। ऐसी विद्या के उपासकों का यह विद्वत्-सम्मेलन है; परंतु किसी विशेष पढ़ाई की डिग्री रखनेवाला ही विद्वान है—ऐसा यह सम्मेमलन नहीं है। अन्यत्र देखते हैं, तब तो जितने विद्वान उतने मत जैसी स्थिति दिखायी देती है और विद्वानों में भी खींचतान चलती है, परंतु यहाँ तो पूज्य स्वामीजी की छाया में वीतरागी विद्या के विद्वान एकत्र हुए हैं और सब एकमत हैं कि—हम तो तत्त्वजिज्ञासु एवं ज्ञानपिपासु हैं.... जिनशासन की सेवा में सब कुछ समर्पित करने को तैयार हैं। ऐसा दृष्टिकोण रखनेवालों का यह विद्वत्-सम्मेलन है। विद्वानों की दो पार्टियों में से किसी एक पार्टी का पोषण करने के लिये यह सम्मेलन नहीं है, परंतु पार्टियों का मतभेद मिटाकर, वीतराग विद्या में एकता के लिये यह सम्मेलन है।—ऐसे विचार श्री बाबूभाई एवं अन्य विद्वानों ने व्यक्त किये थे। तदुपरान्त 'आत्मधर्म' द्वारा जो प्रभावना हो रही है, उसकी प्रशंसा पूर्वक उसके अधिक से अधिक प्रचार की भावना भायी थी।

* * *

जैन समाज के नेता श्री साहू शांतिप्रसादजी का भाषण

[फतेपुर में वैशाख शुक्ला दोज के दिन पूज्य स्वामीजी की जयन्ति के अवसर पर श्रद्धांजलि]

भारत की दिगम्बर जैन समाज के नेता श्री साहू शांतिप्रसादजी ने भारत की समस्त जैन समाज की ओर से स्वामीजी के भावमय श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि—श्रद्धेय स्वामीजी महाराज! आपके चरणों में मेरा शत-शत नमस्कार हो। मैं अपनी ओर से एवं उपस्थित समस्त सभाजनों की ओर से एवं भारत के समस्त जैन समाज की ओर से आपको नमस्कार करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

साहूजी ने कहा कि—जो भी दूर से आपका नाम सुनते हैं और जो आपके पास आते हैं, वे सब एक ही लगन से आते हैं कि आप हम सबको जो सम्यग्दृष्टि होने का रास्ता बतला रहे हैं, उस मार्ग पर चलकर हम सम्यग्दृष्टि किस प्रकार बनें। सम्यग्दर्शन होने का जो मार्ग आप दिखला रहे हैं, उस पर चलकर हम सम्यग्दर्शन प्राप्त करें—ऐसी एक ही लगन से हम सब

आपके पास दूर-दूर से आते हैं। आज भी आपने अपने प्रवचन में यही बतलाया कि हम सम्यग्दृष्टि किसप्रकार बन सकते हैं ?

ढाई हजार वर्श पूर्व भगवान महावीर स्वामी ने यह बात कही थी; सैकड़ों वर्ष के पश्चात् भगवान श्री कुन्दकुन्द ने भी उसी बात को दुहराया; उनके बाद भी कई बड़े-बड़े आचार्य हुए, वे भी यही बात कहते हैं। परंतु 700 वर्ष पहले सारे देश में एक ऐसा वातावरण फैल गया था कि समाज के अधिकांश लोग बाह्य संपत्ति की ओर झुक गये। परंतु आज फिर समाज में जागृति आ गई है तथा अध्यात्म-युग आ रहा है।

हम पूजादि को ही जीवन का मुख्य उद्देश्य मानते थे और उसी उद्देश्य से सब प्रवृत्ति करते थे। स्वामीजी ने उस प्रवृत्ति को नगण्य नहीं कहा है, उससे पुण्य अवश्य होता है, परंतु अपना जो ध्येय मुक्ति प्राप्त करना है, उसके लिये यह पुण्यमार्ग नहीं है। पुण्य हमें स्वर्ग में ले जाता है, परंतु शाश्वत् सुखरूप मोक्षमार्ग वह नहीं ले जा सकता। यह समझकर हम सबको शाश्वत् सुख की दृष्टि रखना चाहिये;—ऐसा पूज्य स्वामीजी का कहना है।

आज यह दृष्टि हमें स्वामीजी ने दी है; यह दृष्टि हमें भगवान महावीर और भगवान कुन्दकुन्द को समझने में सहायक होगी।

साहूजी ने कहा कि—अपने 70 वर्षीय जीवन में 30-35 वर्ष से मैं स्वामीजी का नाम सुन रहा हूँ और आपके संबंध में समस्त परिस्थिति से अवगत रहा हूँ। स्वामीजी के बारे में समाज ने बहुत सोचा, बहुत ऊहापोह किया, परंतु अंत में सबने मिलकर एकसाथ यह स्वीकार कर ही लिया कि—सत्य तो यही है—जो स्वामीजी कहते हैं।

महाराज! आप सम्यग्दर्शन का ही उपदेश देते हैं। आपका यह उपदेश कितनों को आज सम्यग्दृष्टि बनायेगा और भविष्य में सम्यग्दृष्टि बनने में सहायक होगा। मेरी भी यही अभिलाषा है कि कम से कम स्वामीजी से हमें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो। यही आपका बड़ा उपकार है। हम अरिहंत देव की पूजा में भी यही याचना करते हैं और आज मैं स्वामीजी से यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे भी सम्यग्दर्शन प्राप्त हो।

स्वामीजी के प्रति आदरपूर्वक, साहूजी ने कहा कि महाराज! आपके समक्ष बैठकर मैं कोशिश तो यही करता हूँ, परंतु अब तक मैं सम्यग्दृष्टि नहीं बन सका। मैं बारबार आपसे यही

याचना करता हूँ और आपके सामने बैठकर विचार करता हूँ कि महाराजजी जो कहते हैं वैसा सम्यग्दर्शन मुझे कैसे प्राप्त हो ?

आप लोगों में से बहुतों को सम्यग्दर्शन आया होगा। मुझे मालूम नहीं कितनों को आया ? लेकिन जिन्हें भी आया, वह आपकी वाणी के प्रभाव से आया है। और हमें आशा है कि एक दिन हम भी इसी वाणी के प्रभाव से सम्यग्दृष्टि बन जायेंगे। आप हमें बारंबार यह उपदेश देते रहें, क्योंकि रस्सी के बारंबार घिसने से एक पत्थर भी अंत में घिस जाता है; तो आपके उपदेश से हम अवश्य ही एक दिन सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे। हमने ऐसा नहीं किया तो हम उस बछड़े में से भी जायेंगे। (छुटकारे के अवसर पर बछड़े को भी उत्साह आता है और संत तुझे तेरे छुटकारे का मार्ग सुनाते हैं उसे सुनकर यदि उल्लास नहीं आया तो तू बछड़े से गया-बीता है।—यह बात प्रवचन में आयी थी, उसी का उल्लेख करके साहूजी ने यह बात कही है।)

अब तक मेरा मिथ्यात्व नहीं मिटा, परंतु मुझे विश्वास है कि एक दिन हमारा भी मिथ्यात्व मिट जायेगा। आपकी वाणी से, आपके दर्शन से आपके विचारों से तथा आपकी उपस्थिति से मेरा और इस संसार का मिथ्यात्व कम होगा और हमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि आप शत-शत वर्ष तक जियें। मैं अपनी और समाज की ओर से जन्म-जयन्ती के उपलक्ष में आपको श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ। आपने जो रास्ता बताया, वह उत्तम है, परंतु सोचने की बात यह है कि हमारे बच्चों को किसप्रकार इस रास्ते पर लाया जाये।

मैं अपने को बहुत भाग्यशाली समझता हूँ कि जब आप यह उपदेश दे रहे हो, उसी काल और उसी देश में मेरा जन्म हुआ तथा प्रवचन सुनने का अवसर बारंबार मिल रहा है। आपके प्रवचन ध्यान से सुनता हूँ, उसमें देह आत्मा की भिन्नता को समझता हूँ किंतु उसमें जैसा आनंद आपको आता है, जैसा अनुभव आपको होता है, वैसा मुझे नहीं हो पाता। फिर भी मैं अपना जीवन आपके जैसा बनाना चाहता हूँ—उसके लिये आपके आशीर्वाद के सिवा और कोई रास्ता नहीं दिखता। अतः आप आशीर्वाद दीजिये। ऐसा कहकर पूज्य स्वामीजी के चरणों में नमस्कार करके साहूजी ने अपना भाषण समाप्त किया और पूज्य स्वामीजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

साहूजी का भावपूर्ण प्रवचन सुनकर दस-बारह हजार सभाजन अत्यंत प्रसन्न हुए थे।

श्री साहू शांतिप्रसादजी ने पूज्य स्वामीजी की 83वीं जन्म-जयंती के हर्षोल्लास में अपनी ओर से 83) रुपये की एक सौ रकमें (कुल 8300 रुपये) अर्पण किये थे।

तत्पश्चात् महासभा के मंत्री श्री परसादीलालजी पाटनी, दिल्ली ने श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए कहा कि—स्वामीजी आत्मा का ऐसा स्वरूप समझाते हैं कि आजकल दुनिया में ढूँढ़ने पर भी आत्मा का ऐसा स्वरूप समझानेवाला दूसरा कोई नहीं मिलता।

'जैनमित्र' के संपादक श्री मूलचंद्र किसनदास कापडियाजी सूरत, जिनकी उम्र 90 वर्ष की है, उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में पूज्य स्वामीजी के द्वारा हो रही अद्भुत धर्म-प्रभावना का वर्णन किया और कहा कि जैनों के राजा साहूजी ने जो कुछ कहा, उससे अधिक मैं क्या कहूँ? पहले सर सेठ हुकमचन्दजी जैन समाज के राजा थे, वे भी स्वामीजी को अभिनंदन देते थे और आज जैनों के राजा साहूजी ने स्वामीजी का सन्मान किया है।

कापडियाजी ने आगे चलकर कहा कि—सम्यग्दर्शन जैसे अध्यात्म विषय पर आप कई महीनों तक बोल सकते हैं; 'समजाय छे कांई?'—ऐसा कहकर आप जब समझाते हैं, तब आपकी वाणी तथा मुख देखकर हमें अति आनंद होता है। आप हँस-हँसकर सब समझाते हैं। आपकी मुद्रा में कोई अद्भुत चमत्कार है और श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड़ जैसे गंभीर ग्रंथ तो आपके मस्तिष्क में भरे हैं। 35 वर्ष में आपने दिगम्बर जैन समाज में गजब का चमत्कार किया है और लाखों लोगों को दिगम्बर जैन बनाकर महान प्रभावना की है। देखो तो सही, इस छोटे से फतेपुर में कितने लोग आये हैं। उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम सभी दिशाओं से बड़े-बड़े लोग यहाँ पधारे हैं। फतेपुर में तो फतह का पूर आ गया है। इस छोटे से फतेपुर में आपकी 83वीं जन्यती जिस अपूर्व ढंग से मनायी गई है, वह अभी तक के जन्म-जयन्ती के इतिहास में सबसे महान है। (सोनगढ़ में मनायी गई 58वीं जन्म-जयन्ती तो अद्भुत उत्साह प्रेरक थी)। मैं महाराजश्री को अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ। 'जैनमित्र' जो कि 70 वर्ष से सूरत से प्रकाशित होता है तथा 'जैन महिलादर्श' और 'दिगम्बर जैन' भी सूरत से मुद्रित होते हैं।—इन तीनों पत्रों के समस्त परिवार की ओर से तथा अपनी ओर से मैं श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ और भावना भाता हूँ कि स्वामीजी के द्वारा सदा धर्म की प्रभावना होती रहे।

कारंजा (महाराष्ट्र) के सेठ श्री ऋषभदासजी चवरे के सुपुत्र ने पूज्य स्वामीजी को

श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि—आज हमारे बड़े ही सौभाग्य का विषय है कि हमें ऐसे महा पुरुष की जन्म-जयन्ती मनाने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। दो वर्ष पूर्व जब शिरपुर (अंतरिक्ष पार्श्वनाथ) में पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा हुई थी, तब स्वामीजी का प्रवचन सुनने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था, और हमें नई दिशा मिली थी। गुजरात की भूमि ने भारत को नेमिनाथ तीर्थंकर जैसी महान विभूति दी थी, और आज फिर भारत को स्वामीजी जैसे महात्मा इसी गुजरात (-सौराष्ट्र) ने दिये हैं। पहले विद्वान लोग या भट्टारक लोग समयसार को हमसे छिपाते थे, हमें देखने भी नहीं देते थे। किंतु आज स्वामीजी ने समयसार को घर-घर पहुँचा दिया है; समयसार हमारे हाथ में दिया और उसकी वाणी हमारे कानों तक लाकर उसका रहस्य हमारे हृदय तक पहुँचा दिया है। हम स्वामीजी का जितना उपकार मानें, उतना कम है। मैं महाराष्ट्र की जनता की ओर से स्वामीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

गौहाटी (आसाम) के भाई श्री नेमिचंदजी ने कहा कि—जगत में जयन्तियाँ तो बहुत मनायी जाती हैं; परंतु सच्ची जयंती तो उसकी मनायी जाती है जिसने आत्मसाधना के द्वारा जन्म-मरण का अंत किया हो। पूज्य महाराजश्री ने हमें जन्म-मरण के अंत का उपाय बतलाया है। उसे समझकर फिर से जन्म धारण न करना पड़े, ऐसा करना चाहिये, तब स्वामीजी की सच्ची जन्म-जयन्ती मनायी कहलाती है।

भाई श्री बाबूभाई ने भी अपनी ओजस्वी भाषा में पूज्य स्वामीजी की महिमा का वर्णन करते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए कहा कि—आज हमारा फतेपुर धन्य हुआ, गुजरात धन्य हुआ तथा हम सब धन्य हुए हैं। पूज्य स्वामीजी ने यदि विदेह से यहाँ आकर जन्म नहीं लिया होता तो हमें सच्चा मार्ग कौन बतलाता? पूज्य स्वामीजी ने हम सबको मिथ्यामार्ग से छुड़ाकर सच्चा जैनधर्म समझाया है। भगवान का स्वरूप और दिगम्बर मुनियों का स्वरूप पूज्य गुरुदेव ने ही हमें बतलाया है। अतः हम उनका जितना उपकार मानें उतना कम है।

(इन सबके अलावा अन्य कई महानुभाव, विद्वान, कविगण अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने को आतुर थे, लेकिन पंचकल्याणक संबंधी कार्य चालू होने के कारण विशेष समय नहीं मिल सका था। फतेपुर पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा एवं पूज्य स्वामीजी की जन्म-जयन्ती संबंधी जो समाचारादि स्थानाभाव के कारण रह गये हैं, वे सब अगले अंक में दिये जायेंगे।)

पूज्य श्री कानजीस्वामी का सोनगढ़ में

मंगल-आगमन

पूज्य स्वामीजी अपना लँबी अवधि का मंगल-विहार समाप्त करके ज्येष्ठ कृष्णा तृतीया तारीख 14 जून बुधवार को प्रात:काल सोनगढ़ पधारे और मुमुक्षुओं ने हार्दिक स्वागत किया। सोनगढ़ के सुषुप्त वातावरण में पुन: जागृति आ गई है। पहले जहाँ सारा नगर उजड़ा-सा दिखायी देता था, वह आज मानों फिर लहलहा उठा है। जगह-जगह स्त्री-पुरुषों की टोलियाँ तत्त्वचर्चा करती दिखायी देने लगी हैं। पूजा-भक्ति-प्रवचनादि के नियमित कार्यक्रम पुन: प्रारंभ हो गये हैं।

चार महीने के विहार-काल में पूज्य स्वामीजी ने सौराष्ट्र-गुजरात-राजस्थान-मध्यप्रदेश-महाराष्ट्र के अनेक छोटे-बड़े नगरों को पावन किया और जैनधर्म शिक्षण-शिविर, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव, वेदी-प्रतिष्ठा, स्वाध्याय-भवनों का उद्घाटन आदि अनेक धर्म-प्रभावना के मंगलकार्य किये। पूज्य स्वामीजी ने जो अध्यात्म-रस की सरिता प्रवाहित की, उसमें स्नान करके अनेक जिज्ञासु पावन हुए। पूज्य स्वामीजी जहाँ जाते हैं, वहाँ के वातावरण में आध्यात्मिक-चेतना आ जाती है और लोग जगह-जगह अध्यात्म की चर्चा करते दिखायी देते हैं। सचमुच यह हमारा महान सौभाग्य है कि इस काल में पूज्य स्वामीजी जैसे महान आतमा का संयोग हमें प्राप्त हुआ है और उनकी वाणी द्वारा अध्यात्मरस का पान करते हुए अनेक मुमुक्षु आत्मकल्याण की ओर बढ़े रहे हैं। — मगनलाल जैन

साधक का अपूर्व पुरुषार्थ

जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट करने का पुरुषार्थ पहिले कभी नहीं किया, उसने अनंत सम्यक् पुरुषार्थ करके पहिली ही बार सम्यग्दर्शन प्रगट किया और इसप्रकार संपूर्ण स्वरूप का साधक हुआ—ऐसा जीव किसी भी संयोग में, भय से, लज्जा से, लालच से अथवा अन्य किसी भी कारण से असत् को पोषण नहीं देता; कदाचित् किसी बार शरीर छूटने तक की प्रतिकूलता आ गई हो तो भी सत् से च्युत नहीं होता, असत् का आदर कभी नहीं करता। स्वरूप के साधक नि:शंक और निडर होते हैं। सत् स्वरूप की श्रद्धा के जोर में और सत् के माहात्म्य के कारण उसको कोई प्रतिकूलता है ही नहीं। यदि सत् से जरा भी च्युत हो तो उसको प्रतिकूलता आई कहा जाये, लेकिन जो क्षण-क्षण सत् में विशेष-विशेष दृढ़ता कर रहा है, उसको तो स्वयं के असीमित पुरुषार्थ के कारण जगत में कुछ भी प्रतिकूलता है ही नहीं। वह तो 'परिपूर्ण सत्स्वरूप' के साथ अभेद हो गया, उसको डिगाने के लिये जगत में कौन समर्थ है ?—धन्य है ऐसे स्वरूप के साधक को!

(राग कालिंगड़ी)

तजिए राग विकार, गहिये ज्ञान उदार ॥टेक॥

करत विषयवश बहु जन भरिया, ले ले दु:ख अपार ॥तजिए० ॥1॥

जड़ चेतन संयोग अनादि, एक लखे अविचार।

कर्मबंध दिढ बांधि निरंतर भरमैं जिय संसार ॥तजिए० ॥2॥

जिनवानी सुनि धारि चित्त में भेदज्ञान करि सार।

दर्शन ज्ञान चरन परिणतिमय लहिये मोक्ष द्वार ॥तजिए० ॥3॥

नयन यहै उपदेश गुरुनिको मानूं करि निरधार।

मनुष जनम उत्तम कुल संगति सफल करो सुखकार ॥तजिए० ॥4॥

(श्री जयचंद छाबड़ा)

सम्यक्त्व के आठ अंगों का स्वरूप

(सवैया इकतीसा)

धर्म मैं न संसै सुभकर्म फलकी न इच्छा,
असुभ को देखि न गिलानि आने चित में।
सांची दिष्टि राखै काहू प्रानी कौ न दोष भाखै,
चंचलता भानि थिति ठानै बोध वितमैं।
प्यार निज रूप सौं उछाह की तरंग उठै,
एई आठौं अंग जब जागैं समकित मैं।
ताहि समकितकौं धरै सो समकितवंत,
वहै मोख पावै जौ न आवै फिरि इतमैं॥

—स्वरूप में संदेह नहीं करना नि:शंकित अंग है, शुभ क्रिया करके उसके फल को अभिलाषा नहीं करना नि:कांक्षित अंग है, दुखदायक पदार्थ देखकर ग्लानि नहीं करना निर्विचिकित्सा अंग है, मूर्खता त्यागकर तत्त्व का यथार्थ निर्णय करना अमूढ़दृष्टि अंग है, दूसरों के दोष प्रगट नहीं करना उपगूहन अंग है, चित्त की चंचलता हटाकर रत्नत्रय में स्थिर होना स्थितिकरण अंग में, आत्मस्वरूप में अनुराग रखना वात्सल्य अंग है, आत्म-उन्नति के लिये उत्साहित रहना प्रभावना अंग है—इन आठ अंगों का प्रगट होना सम्यक्त्व है, उस सम्यक्त्व को जो धारण करता है, वह सम्यग्दृष्टि है, सम्यग्दृष्टि ही मोक्ष पाता है और फिर इस संसार में नहीं आता।

(—पंडित बनारसीदासजी)

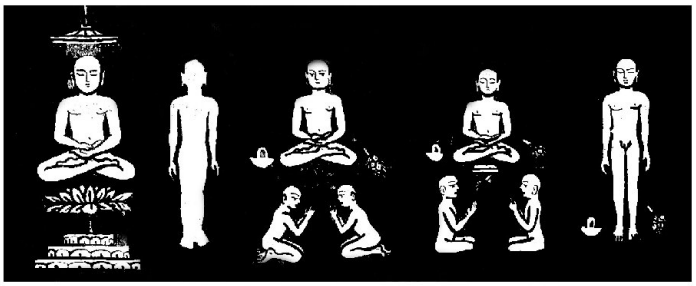

पंच परमेष्ठी का प्रसाद

पंच परमेष्ठी के आत्मा में परम आनंद की तरंगें उठती हैं। उन पंच परमेष्ठी को पहिचानकर नमस्कार करने से आत्मा के भाव में पवित्रता प्रगट होती है... आनंद होता है... मंगल होता है। यह पंच परमेष्ठी का प्रसाद है।

पंच परमेष्ठी के प्रसाद से सम्यक्त्वादि प्रगट होने पर चैतन्यरस का पान करते ही भव की क्षुधा शांत हो जाती है।

अहा, चैतन्यसुख के अनुभव की क्या बात! ऐसा अनुभव पंच परमेष्ठी के मार्ग में ही प्राप्त होता है।

साधक को स्वरूप के एक विकल्प से जो पुण्यबन्ध होता है, वह पुण्य भी जगत को आश्चर्यचकित कर देता है, तो उसके निर्विकल्प साधकभाव की महिमा की क्या बात? वह पंच परमेष्ठी के आधार से प्राप्त होता है।

वीतराग प्रभु के मार्ग की साधना तो शूरवीरों का कार्य है, वह कहीं कायरों का काम नहीं है। वीर तो उन्हें कहते हैं जो राग के बंधन को तोड़कर मोक्ष की साधना करें।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)